MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 3

वर्ष 3, अंक 11, जुलाई-2017
आषाढ़, वि. सं. 2074, ₹ 50

मंगल विमर्श

त्रैमासिक

वादे वादे जायते तत्त्वबोधः

अंदर के पृष्ठों पर

6-11
मंदिरों का ऐश्वर्य
बनवारी

12-17
स्वामी विवेकानंद का शिक्षा चिंतन
सुरेश महेश्वरी

18-23
मातृभाषा में शिक्षा
ओम प्रकाश मिश्र

24-31
भारतीय साहित्य में भावात्मक एकात्मता
डॉ. भुवनेश्वर प्रसाद गुरुमैता

32-41
मातृऋण शोधन पुनर्विचार
दामोदर शांडिल्य

42-47
बांग्लादेशी घुसपैठ ने बदला प. बंगाल का जनसंख्या चरित्र
राजेंद्र चड्डा

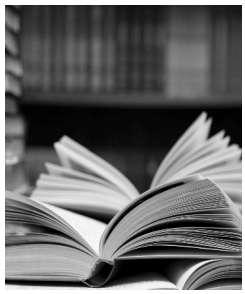

48-51
भारतीय शास्त्रीय ग्रंथों के अपहरण की साजिश
मनोज ज्वाला

52-57
क्यों चाहिए गाँव
तुलसी टावरी

58-61
गर्मी से कैसे करें अपना बचाव
डॉ. सुनील आर्य

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंगलाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संपादक
सुनील पांडेय

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

प्रकाशक एवं मुद्रक आदर्श गुप्ता द्वारा मंगल सृष्टि, सी-84, अहिंसा विहार, सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 के लिए प्रकाशित एवं एक्सेल प्रिंट, सी-36, एफ एफ कॉम्प्लेक्स, झंडेवाला, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

RNI
DELHIN/2015/59919
ISSN
2394-9929
ISBN
978-81-930883-9-5

फोन नं.
+91-9811166215
+91-11-27565018
ई-मेल
mangalvimarsh@gmail.com
वेब साइट
www.mangalvimarsh.in

मंगल विमर्श पत्रिका में व्यक्त विचारों के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी हैं। संपादक, मुद्रक व प्रकाशक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

सभी विवादों का न्याय क्षेत्र केवल दिल्ली होगा।

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 4

जी.एस.एल.वी.- एमके-3

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 5

अथ

पिछले कुछ वर्षों से भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) द्वारा निरंतर प्राप्त उपलब्धियाँ विश्व मे भारत का मस्तक ऊँचा किए हैं। तद्विषयक समाचार पढ़कर एक अकथनीय प्रफुल्लता की अनुभूति होती है।

एक समय था जब हमने अपना प्रथम उपग्रह 'आर्यभट्ट' सोवियत संघ के सहयोग से अंतरिक्ष में भेजा था; आज हम अपने प्रातिभ वैज्ञानिकों डॉ. विक्रम साराभाई, सतीश धवन, कृष्णास्वामी कस्तूरीरंगन, जी.माधवन नायर, डॉ. एलेक्स, के. एन. शंकर व राधाकृष्णन आदि के सतत् प्रयासों से ऐसी समुन्नत स्थिति में हैं कि न केवल अपने, अपितु अन्य देशों व संगठनो (जिसमें नासा भी शामिल है) के उपग्रह सफलतापूर्वक अंतरिक्ष में भेज रहे हैं। इसी वर्ष के प्रारंभ में इसरो ने एक साथ 104 उपग्रह व अनुसंधानात्मक उपकरण प्रक्षेपित करके नया विश्व रिकार्ड बनाया था।

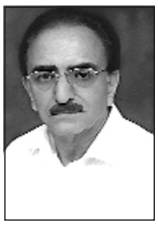

ओमीश परुथी
एसोसिएट प्रोफेसर (से.नि.)
प्रधान संपादक

सन् 2008 में इसरो द्वारा काफी कम लागत में चंद्रयान भेजना एक श्लाघनीय प्रयास था। इसके द्वारा पहली बार चांद पर जल का आभास हुआ। 2014 में इसरो ने प्रथम प्रयास में ही मांगल ग्रह पर यान भेजने में सफलता पाई, जो विस्मय विमुग्धकारी थी। अमेरिका व रूस भी कई प्रयासों के बाद मंगल मिशन में कामयाब हुए थे। कहा जाता है आदमी मंगल से तथा औरतें वीनस से आई हैं, लेकिन मंगल मिशन में हमारी महिला वैज्ञानिकों का भी प्रशस्य योगदान रहा। इस मिशन की उप निर्देशक नलिनी हरिनाथ थीं। इन महिला वैज्ञानिकों के कार्य से प्रभावित होकर बी.बी.सी ने एक विशेष कार्यक्रम प्रसारित किया था।

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान के जनक डॉ. विक्रम साराभाई के नेतृत्व में 1969 में इसरो अस्तित्व में आया। 1975 में प्रथम उपग्रह आर्यभट्ट का निर्माण हुआ। 'इनसेट' को बना कर इसरो ने सुदूर संदेश, दूरदर्शन, सुदूर शिक्षण, आपदा प्रबंधन, सुदूर चिकित्सा व मौसम विज्ञान में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। 1980 में स्वदेशी प्रक्षेपण वाहन से रोहिणी उपग्रह छोड़ने में इसरो को उत्साहवर्धक सफलता मिली। इसके बाद उसने कभी पीछे मुड़ कर नहीं देखा। सतत् आगे बढ़ता गया। स्वदेशी क्रायोजेनिक इंजन बनाया। ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण यान (पीएसएलवी) व भू-स्थिर उपग्रह प्रक्षेपण यान (जीएसएलवी) बनाकर इसरो ने अंतरिक्ष अनुसंधान में स्वयं को सर्वसक्षम बना लिया है। पिछले माह 'दक्षिण एशिया उपग्रह' प्रक्षेपित कर इसरो ने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के सपने को साकार किया है। 5 जून को एक बाहुबली राकेट जीएसएलवी मार्क तीन का सफल परीक्षण किया गया। अब उसकी निगाहें बृहस्पति व शुक्र ग्रह की ओर लगी हैं। यही निष्ठा व अध्यवसाय रहा, तो अवश्य सफलता मिलेगी। शुभकामनाएँ।

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 6

शास्त्रीय दृष्टि में मंदिर की विशद् सामाजिक भूमिका है। आजकल जो भ्रामक धारणा बन गई है कि धर्म व्यक्तिगत है, उसके विपरीत मंदिर धर्म की सामाजिक भूमिका का निर्वाह करने के लिए ही हैं। मंदिरों का उद्देश्य समाज को एकत्र रखना और उनके दैनंदिन जीवन को दिव्यता से जोड़े रखना है। शास्त्रीय दृष्टि से मंदिर के आठ आवश्यक अंग है। मंदिर में पाठशाला, नाट्यशाला, गौशाला, व्यासपीठ, सरोवर, अन्न क्षेत्र, कोष और विग्रह होना आवश्यक है।

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 7

मंदिरों का ऐश्वर्य

बनवारी

जिन संस्थाओं के कारण अपनी नैसर्गिक विविधताओं की रक्षा करते हुए हम देशकाल को लाँघते हुए अपनी जातीय एकता बनाए रहे हैं, उनमें मंदिर अग्रगण्य ही होंगे। अत्यंत प्राचीन काल से मंदिर हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का केंद्र रहे हैं। भारत के लोग जहाँ भी गए, उन्होंने अपने वैभव और कला-कौशल के अनुरूप भव्य और विशाल मंदिर बनवाए। इसका सबसे महत्त्वपूर्ण उदाहरण कंपूचिया का अंगकोर वाट मंदिर है। दलदली भूमि पर बारहवीं शताब्दी के आरंभ में यह मंदिर ख्मेर राजाओं ने बनवाया था। 162 हेक्टेयर भूमि पर बना यह विशाल मंदिर उस समय ही नहीं, आज भी अत्यंत कुशल इंजीनियरिंग का अद्‌भुत नमूना है। ख्मेर राजा शैव थे। लेकिन सूर्यबर्मन द्वितीय (1113-1150) वैष्णव हो गए थे और उन्होंने अपनी राजधानी यशोधरापुर में यह विशाल मंदिर बनवाया था। दक्षिण-पूर्व एशिया के मध्यवर्ती काल में बने मंदिरों की छटा आज भी वहाँ के अनेक नगरों में देखी जा सकती है। पश्चिम की ओर मध्य-एशिया तक मंदिरों की वैसी ही विस्तृत शृंखला थी। यहाँ परवर्ती काल में बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण इस क्षेत्र में बौद्ध प्रतिमाओं का विस्तार हुआ। इसलाम के उदय के समय उसके मतांध अनुयायियों ने इन बुद्ध मूर्तियों को तोड़ा और मुस्लिम राजा बुतशिकन कहलाने लगे।

भारत के बाहर पूर्व और पश्चिम दोनों दिशाओं में एक लंबे समय तक रहा हमारा सांस्कृतिक विस्तार अब काफी सिकुड़ गया है। इतिहास में ऐसा होता रहता है। वह उतनी चिंता की बात नहीं है, जितनी हमारे अपने भौगोलिक क्षेत्र में दिखाई देने वाला हमारा सांस्कृतिक ह्रास। इस संदर्भ में मंदिरों के स्वरूप में हो रहा परिवर्तन विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि मंदिर आज भी हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण केंद्र हैं और हमारी भौतिक उन्नति के साथ-साथ मंदिरों की संख्या और शोभा दोनों में काफी वृद्धि हो रही है। पर पिछले 50 वर्ष में उनका स्वरूप काफी बदल गया है। कुछ मंदिरों में उत्सव आदि की परंपरा आज भी जीवित है। लेकिन शास्त्रीय दृष्टि में मंदिर की और भी विशद् सामाजिक भूमिका है। आजकल जो भ्रामक धारणा बन गई है कि धर्म व्यक्तिगत है, उसके विपरीत मंदिर धर्म की सामाजिक भूमिका का निर्वाह करने के लिए ही हैं। मंदिरों का उद्‌देश्य समाज को एकत्र रखना और उनके दैनंदिन जीवन को दिव्यता से जोड़े रखना है। हमारे मंदिर चर्च या मस्जिद की तरह केवल ईश्वर की प्रार्थना के स्थल नहीं है। उनका

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 8

उद्देश्य इससे कहीं व्यापक हैं।

शास्त्रीय दृष्टि से मंदिर के आठ आवश्यक अंग है। मंदिर में पाठशाला, नाट्यशाला, गौशाला, व्यासपीठ, सरोवर, अन्न क्षेत्र, कोष और विग्रह होना आवश्यक माना गया है।

पाठशाला

अनादिकाल से हमारे यहाँ मंदिरों से जुड़ी पाठशालाएँ शास्त्रीय शिक्षा का आधार रही हैं। इन पाठशालाओं के कारण देशभर में शास्त्रीय शिक्षा का जाल बिछा रहा है। इन पाठशालाओं के कारण ही हम अपनी शास्त्रीय दृष्टि से अपने समाज और शेष विश्व को देखने-समझने में समर्थ रहे हैं। यह पाठशालाएँ केवल आध्यात्मिक शिक्षा के स्थान नहीं थीं। उनमें लौकिक जीवन की उन्नति के लिए आवश्यक शास्त्रीयकरण का भी उतना ही महत्त्व था। इन पाठशालाओं से अच्छे वास्तुविद्, चिकित्सक और साहित्य मर्मज्ञ तो पैदा होते ही थे, खेती, कारीगरी, पशुपालन और सरोवर तथा उपवन आदि की व्यवस्था के कौशल को जानने समझने वाले लोग भी इन्हीं पाठशालाओं से निकलते थे। इन पाठशालाओं के रहते स्तोत्र पाठ में कुशलता और भाषा ज्ञान में वृद्धि आसान थी। हम यह मानते हैं कि शास्त्र का निर्माण, विधि का निर्माण देशकाल को ध्यान में रखते हुए ही किया जाना चाहिए। इस दृष्टि से देशभर में फैली पाठशालाएँ स्थानीय आवश्यकताओं और बदलते समय के अनुरूप शास्त्र निर्माण करती रह सकती थीं। पाठशालाओं के आचार्य विभिन्न वादों का निपटारा भी करते रहते थे। इस दृष्टि से न्याय में भी कुछ सहायता हो जाती थी। इन पाठशालाओं में धर्मशास्त्र के, मीमांसा के पंडितों की उपस्थिति इस दृष्टि से विशेष महत्त्व की होती थी। अब नए मंदिरों में तो पाठशालाओं की व्यवस्था की ओर ध्यान दिया ही नहीं जाता, पुराने मंदिरों में भी पाठशालाएँ लुप्त होती जा रही हैं।

पाठशालाएँ केवल आध्यात्मिक शिक्षा के स्थान नहीं थी। उनमें लौकिक जीवन की उन्नति के लिए आवश्यक शास्त्रीयकरण का भी उतना ही महत्त्व था। इन पाठशालाओं से अच्छे वास्तुविद्, चिकित्सक और साहित्य मर्मज्ञ तो पैदा होते ही थे, खेती, कारीगरी, पशुपालन और सरोवर तथा उपवन आदि की व्यवस्था के कौशल को जानने - समझने वाले लोग भी यहाँ से निकलते थे।

व्यासपीठ

बड़े मंदिरों से जुड़ी एक और संस्था है 'अग्रहारम्'। यह मंदिर के अग्र भाग में स्थित उन ब्राह्मणों की बस्ती का नाम है, जो उस मंदिर से जुड़े रहते हुए शास्त्रों के पठन-पाठन और विवेचन-प्रवचन में लगे रहते थे। इन अग्रहारम् संस्थाओं में बड़े-बड़े पंडित निवास करते थे। बहुत से मंदिर किसी संप्रदाय विशेष के होते थे। तब वे पंडित उस संप्रदाय विशेष की शास्त्रीय दृष्टि को परिमार्जित करने के कार्य में भी निमग्न रहते थे। सामान्यतः सभी मंदिरों में व्यासपीठ भी होते थे। इन व्यासपीठों से अग्रहारम्, पाठशाला या बाहर से आए पंडितों का कथा वाचन चलता रहता था। कथा का समय नियत होता था और उस समय आसपास के श्रद्धालु-जिज्ञासु विग्रह के दर्शन के साथ-साथ कथा श्रवण के लिए भी आते थे। उत्तर भारत में सामान्यतः भागवत की कथा की परंपरा रही है। रामायण का पाठ और प्रवचन भी होता रहा है। लेकिन दक्षिण के मंदिरों में महाभारत पर भी व्यासपीठ से व्याख्यान की परंपरा रही है। महाभारत जैसे धर्म ग्रंथ का उत्तर के व्यासपीठों से व्याख्यान क्यों रोक दिया गया, यह समझना कठिन है। लेकिन अब हमारे आचार्यों को इस अनावश्यक हिचक को दूर करवा देना चाहिए। इसी तरह मंदिरों में

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 9

शास्त्रार्थ की बड़ी पुरानी परंपरा रही है। शास्त्र परंपरा को गतिशील बनाए रखने के लिए यह आवश्यक होता है कि शास्त्रार्थ की परंपरा चलती रहे। इन शास्त्रार्थों के समय बड़े-बड़े पंडित जुटते थे और जब भी कोई नया मत सामने आता था, उसकी बारीकी से मीमांसा की जाती थी। यह परंपरा थी कि अगर कोई पंडित आकर शास्त्रार्थ की इच्छा प्रकट करे तो उसे मना नहीं किया जा सकता। उसके निमित्त शास्त्र सभा बुलाया जाना आवश्यक है।

गौशाला

हमारे यहाँ स्वास्थ्य की रक्षा और विशेषकर स्त्रियों और बच्चों के पोषण में गो-दुग्ध की क्या भूमिका रही है, यह सर्वज्ञात है। इसीलिए गऊ को अवध्य घोषित किया गया और दुग्ध के विक्रय को हतोत्साहित किया जाता रहा। हर परिवार को गऊ दुग्ध उपलब्ध रहे, इसलिए गो-भक्ति का इतना महत्त्व बताया गया है। मंदिर में गऊशाला की उपस्थिति केवल भगवान के भोग के निमित्त दुग्ध उपलब्ध करवाने के लिए नहीं है। गौशालाओं के कारण निश्चय ही पाठशालाओं और अग्रहारम् के पंडितों की आवश्यकताओं की पूर्ति होती रही है। पर गौशालाओं का और भी बड़ा उद्देश्य समाज में गौ सेवा की परंपरा बनाए रखना और बढ़ाते जाना है। मंदिर की गौशालाओं में वयशील गायों की सेवा तो होती ही है, गउओं की निरंतर नस्ल सुधारने व उनके उचित पोषण की व्यवस्था करने का काम भी होता रहा है। बड़े मंदिरों की अपनी चरागाहें भी होती थीं। संकट के समय ये गौशालाएँ समाज के सभी वर्गों की सहायता के लिए उपलब्ध रहती थीं। साधु-संन्यासियों के तो समय-बे समय भोजन का सबसे सुरक्षित स्थान वही थीं।

अन्न क्षेत्र

गौशालाओं के साथ-साथ अन्न क्षेत्र भी मंदिर का आवश्यक अंग बताया गया है। मंदिर में भगवान के दर्शनार्थ आने वाले लोगों को प्रसाद की ही व्यवस्था नहीं होनी चाहिए, मंदिर के प्रांगण में सबके भोजन की व्यवस्था भी होनी चाहिए। आगतों को भोजन करवाना हमारी सभ्यता में अनिवार्य कर्तव्य माना गया है। इसलिए

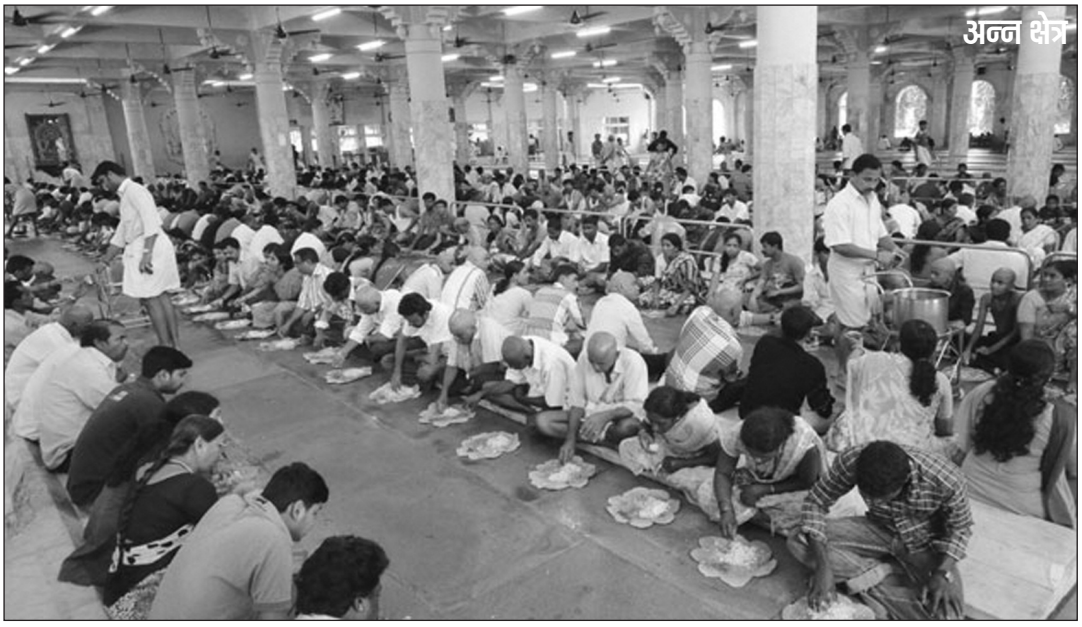
अन्न क्षेत्र

मंदिर में तो भोजन की व्यवस्था होनी ही चाहिए। यह भोजन भी भगवान या भगवती के भोग के उपरांत ही दिया जाता है, इसलिए उसकी शुद्धता और पोषकत्व की ओर सदा ध्यान दिया जाता रहा।

अन्न क्षेत्र की व्यवस्था के पीछे यह संकल्प तो है ही कि समाज का कोई व्यक्ति भूखा न रहे। यह व्यावहारिक ज्ञान देना भी उसका उद्देश्य रहा है कि अच्छा भोजन क्या होता है।

नाट्यशाला

मंदिर के अंग के रूप में नाट्यशाला का होना भी आवश्यक माना गया है। भरत मुनि ने नाट्य का उद्देश्य बताते हुए लिखा है कि नाट्य के द्वारा देव लोक की घटनाओं को मृत्यु लोक में दिखाया जा सकता है।

भगवान् के दर्शन में मध्यकाल में जो रोक-टोक प्रवेश कर गई, वह मंदिर को विधर्मियों से बचाने के लिए हुई होगी। लेकिन आज ऊँच-नीच के आधार पर किसी रोक-टोक की कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। यह भक्ति मार्ग के मूल सिद्धांत का ही निषेध है। भगवान् तो वैसे भी पतित पावन हैं, उनके आश्रय में पहुँचने से किसी को भी नहीं रोका जा सकता।

इसका अर्थ यह है कि नाट्य हमें जीवन के वृहत्तर उद्देश्यों से जोड़े रहता है। दिव्य कथाओं के माध्यम से नाट्य का उद्देश्य समाज में नैतिक अनुशासन बनाए रखना रहा है। कालांतर में यह नाट्यशालाएँ पौराणिक ही नहीं सामाजिक आख्यानों के माध्यम से भी नैतिक मान्यताओं का प्रचार करती रहीं। यह नाट्यशालाएँ नाट्य के साथ-साथ नृत्य और संगीत की साधना का भी केंद्र रही हैं। भारत में हर क्षेत्र की अपनी नाट्यशैली, अपनी नृत्यशैली और अपनी शास्त्रीय संगीत की परंपरा रही है। उसके संरक्षण और अभिवृद्धि में इन नाट्यशालाओं के योगदान का मूल्य नहीं आँका जा सकता। आप कर्नाटक के मंदिर के बाहर यक्ष गान को होते देखकर ही उसके वैभव का अनुमान लगा सकते हैं। लोकनाट्य परंपराओं और लोकगीतों को भी इन नाट्यशालाओं का समर्थन मिलता रहा है।

सरोवर

यह आवश्यक है कि भगवान के दर्शन के लिए उपस्थित व्यक्ति स्वच्छ हो। इसलिए मंदिरों में सरोवरों के निर्माण की व्यवस्था की गई। सरोवरों का एक और बड़ा उद्देश्य जलवायु को संतुलित रखना है। जल की उपलब्धि बनी रहे और वायु शीतल व नम रहे, यह स्वस्थ वातावरण के लिए आवश्यक है।

विग्रह

मंदिर के केंद्र स्थान में तो विग्रह (मूर्ति)होता ही है। हमारी इस मान्यता के बावजूद कि जगत् में जो कुछ भी है, सब ईश्वर से व्याप्त है, विग्रह का महत्त्व है। विग्रह का अर्थ ही है कि उसमें दिव्य सत्ता का विशेष आधान है। कोई भी मूर्ति तभी विग्रह होती है, जब उसमें मंत्रोच्चारपूर्वक प्राण-प्रतिष्ठा हो जाती है। भगवान के किसी स्वरूप का दिग्दर्शन करवाने वाली मूर्ति वास्तुशास्त्र में वर्णित दिव्य स्वरूप के सभी लक्षणों से संपन्न होनी चाहिए। यह माना जाता रहा है कि स्थपति मूर्ति बनाने से पहले अपने हृदय में देवसत्ता की उस विशेष छवि के दर्शन करता है और उसी के अनुसार वह मूर्ति का निर्माण करता है। विग्रह में भगवान की जाग्रत शक्ति होती है, इसलिए मूर्ति का निर्माण सावधानीपूर्वक ही किया जाना चाहिए। मंदिर में मूल विग्रह के अतिरिक्त देव पंचायतन की व्यवस्था भी रही है। उसके अतिरिक्त भगवती के स्वरूप का और भगवान के वाहन आदि का यथा स्थान होना भी आवश्यक है। मंदिर का गर्भगृह शोभायुक्त और

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 11

विग्रह

सुभाषित रहना चाहिए। भगवान् की छवि के दर्शन सभी को सुगमतापूर्वक हो सकें, इसकी ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। भगवान् के दर्शन में मध्यकाल में जो रोक-टोक प्रवेश कर गई, वह मंदिर को विधर्मियों से बचाने के लिए हुई होगी। लेकिन आज ऊँच-नीच के आधार पर किसी रोक-टोक की कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। यह भक्ति मार्ग के मूल सिद्धांत का ही निषेध है। भगवान् तो वैसे भी पतित पावन हैं, उनके आश्रय में पहुँचने से किसी को भी नहीं रोका जा सकता।

कोष

इसके अलावा पेड़-पौधे और दूर से आने वाले लोगों के लिए आश्रय की व्यवस्था भी मंदिर में आवश्यक मानी जाती रही है। इन सब कार्यों के लिए कोष आवश्यक है। मंदिर का कोष भी एक आवश्यक अंग है। मंदिर में आने वाले दानादि से उसके सभी कामों का निर्वाह होना चाहिए। कोष देवता के निमित्त है। उसमें से पुजारी आदि को उसका उचित भाग दिया जाना चाहिए। लेकिन मंदिर के कोष पर देवता के अतिरिक्त किसी और का स्वामित्व नहीं होता। इसलिए उसका विवेकपूर्वक मंदिर के सभी कामों के लिए उपयोग किया जाना चाहिए। अकाल-महामारी जैसे संकट के समय मंदिर के कोष से ही समाज की सहायता होनी चाहिए। कृषि आदि व्यावसायिक कामों के लिए विपत्ति ग्रस्त व्यक्ति उसी कोष से आवश्यक सहायता ग्रहण करते रहे हैं। यह मान्यता रही है कि मंदिर से लिया गया पैसा कोई बिना दिए नहीं रहता है। क्योंकि उस पैसे का दुरुपयोग अनिष्ट की ओर ले जा सकता है। मंदिर की यह सब भूमिकाएँ समाज को नैतिक और ऊर्जावान बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं। मंदिर केवल पूजा घर नहीं है, वह हमारे सामाजिक जीवन में दिव्यता बनाए रखने का महत्त्वपूर्ण माध्यम रहा है। मंदिरों का यह ऐश्वर्य लौटना चाहिए।

लेखक चिंतक व वरिष्ठ पत्रकार हैं।

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 12

स्वामी विवेकानंद वेदांत और पाश्चात्य शिक्षा दोनों को साथ रखते हुए शिक्षा द्वारा विश्व कल्याण की भावना को प्रसारित करना चाहते थे। स्वामी जी का शिक्षा के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण था। उच्च आदर्शों की अभिप्राप्ति के लिए शिक्षा को ही सर्वोपरि साधन मानते थे। मानव विकास के लिए आचरण शुद्धि, भाईचारा, संवेदनशीलता, बंधुत्व की भावना, वंचितों का उद्धार, नारी चेतना और समरसता की प्रधानता हेतु शिक्षा की अनिवार्यता है। शिक्षा द्वारा आज का बालक जब कल का नागरिक बने, तो वह समाजसेवा, धार्मिक सद्भावना, जनशिक्षा और श्रेष्ठ नागरिकता की दिशा में प्रवृत्त होगा। विश्व शांति और अध्यात्म की दिशा में उन्मुख करने के लिए शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण संसाधन है। शिक्षा द्वारा ही अभूतपूर्व सामाजिक परिवर्तन संभव है।

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 13

सुरेश महेश्वरी

स्वामी विवेकानंद का शिक्षा चिंतन

इतिहास पुरुष स्वामी विवेकानंद ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को संपूर्ण विश्व में प्रचारित करते हुए अपनी ओजपूर्ण वाणी से भारतवासियों को जाग्रत करते हुए संदेश दिया है कि यदि भारत देश को अशिक्षा, संस्कारहीनता और दुर्बलता से मुक्ति दिलाना है, तो जन शिक्षा को व्यापकता देनी होगी। श्रीरामकृष्ण ने भी कहा है ''जब तक मैं जीवित हूँ तब तक सीखता रहूँगा। वह व्यक्ति, वह समाज जिसके पास सीखने को कुछ भी नहीं है वह पहले से ही मौत के जबड़े में है।'' स्वामी विवेकानंद कहते हैं शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक रूप से जो भी कमजोर बनाता है उसे जहर की तरह त्याग दो। हमारा कर्तव्य है कि हम हर किसी को उसका उज्ज्वल आदर्श जीवन जीने के संघर्ष में प्रोत्साहित करें। जीवन में उच्चादर्शों को प्राप्त करने के लिए हम जितना ज्यादा बाहर आएँ और दूसरों का भला करें, हमारा हृदय उतना ही शुद्ध होगा और परमात्मा उसमें बसेंगे।

स्वामी जी का कथन है कि जिस शिक्षा द्वारा इच्छा-शक्ति का प्रवाह और विकास लाया जाता है और फलदायक होता है वही शिक्षा कहलाती है। स्वामीजी का राष्ट्रव्यापी उद्घोष कि ''मेरी समस्त भावी आशाएँ उन युवकों में केंद्रित हैं जो चरित्रवान एवं बुद्धिमान हों।'' उन्होंने आह्वान किया कि उठो मेरे शेरों ! इस भ्रम को मिटा दो कि तुम दुर्बल हो। तुम एक अमर आत्मा हो, सनातन हो, स्वछंद जीवन हो। हमारी सोच ही हमें महान बनाती है।''

हम वो हैं जो हमारी सोच ने हमें

बनाया है। इसीलिए इस बात का ध्यान रखिए कि आप क्या सोचते हैं। शब्द गौण हैं, विचार प्रमुख हैं। वे दूर तक यात्रा करते हैं। अतः सुसंस्कारी शिक्षा की अनिवार्यता है। हमें ऐसी शिक्षा मिले कि हम हर किसी को उसका उच्चतम आदर्श जीवन जीने के संघर्ष हेतु - ''किसी चीज से डरो मत। तुम अद्‌भुत काम करोगे। यह निर्भयता ही है जो क्षणभर में आनंद लाती है। कुछ मत पूछो, बदले में कुछ मत माँगो, जो देना है वो देगा। वो तुम तक वापस आएगा, पर उसके बारे में अभी मत सोचो।''

स्वामी विवेकानंद वेदांत और पाश्चात्य शिक्षा दोनों को साथ रखते हुए शिक्षा द्वारा विश्व कल्याण की भावना को प्रसारित करना चाहते थे। स्वामी जी का शिक्षा के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण था। वे उच्च आदर्शों की अभिप्राप्ति के लिए शिक्षा को ही सर्वोपरि साधन मानते थे। मानव विकास के लिए आचरण शुद्धि, भाईचारा, संवेदनशीलता, बंधुत्व की भावना, वंचितों का उद्धार, नारी सम्मान और समरसता की प्रधानता हेतु शिक्षा की अनिवार्यता है। शिक्षा द्वारा आज का बालक जब कल का नागरिक बने, तो वह समाजसेवा, धार्मिक सद्‌भावना, जनशिक्षा और श्रेष्ठ नागरिकता की दिशा में प्रवृत्त होगा। विश्व शांति और अध्यात्म की दिशा में उन्मुख करने के लिए शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण संसाधन है। शिक्षा द्वारा ही अभूतपूर्व सामाजिक परिवर्तन संभव है। स्वामी जी का शैक्षिक चिंतन जनकल्याणकारी होने के कारण ही विश्व समुदाय में आदरणीय रहा। यह गर्व की बात है कि स्वामीजी ने अपने शैक्षिक चिंतन द्वारा ही विश्व पटल पर अपनी धर्म-ध्वजा लहराई। उनका जीवन दर्शन व शैक्षिक चिंतन आदर्श, अनुकरणीय तथा लोकोपकारी सिद्ध हुआ।

भारत एक बहुरंगी देश है। भाषा, आचरण, भाव, विचार, पहनावा, रीति-रिवाज, संस्कार तथा जीवन शैली में भिन्नता होते हुए भी स्वामी जी ने सभी को एक तत्त्व के रूप में मानते हुए, शिक्षा से समाविष्ट किया है। सभी धर्मों को समान मान्यता देते रहे हैं। स्वामी जी के अनुसार शिक्षा मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है। संपूर्ण शिक्षण प्रशिक्षण का उद्‌देश्य मनुष्य निर्माण का ही रहा है। वर्तमान में शिक्षा व शिक्षण पर पाश्चात्य प्रभाव अवश्य है, किंतु स्वामीजी के शैक्षिक चिंतन का पूरा प्रभाव समग्र शिक्षा व्यवस्था पर दृष्टिगत होता है। शिक्षा का मूल उद्‌देश्य मनुष्य की शारीरिक क्षमता, मानसिक, भावात्मक, धार्मिक, नैतिक, चारित्रिक, सामाजिक तथा व्यावसायिक विकास करना है। शिक्षा द्वारा मानव अपनी वैचारिक मुक्तता के साथ ही देश भक्ति से परिपूर्ण रहकर राष्ट्र के लिए समर्पित हो सके, वही सच्ची शिक्षा है।

शिक्षा ऐसी हो जो मानव मन में आत्मविश्वास, आत्मश्रद्धा, आत्मत्याग, आत्मनियंत्रण, आत्मनिर्भरता तथा आत्मज्ञान जैसे विशिष्ट गुणों का प्रादुर्भाव कर सके। जिस शिक्षा से हम अपने जीवन का निर्माण कर सकें, चरित्र गठन कर सकें और विचारों का सामंजस्य कर सकें, वही शिक्षा कहलाने योग्य है। -*स्वामी विवेकानंद*

शिक्षा ऐसी हो जो मानव मन में आत्मविश्वास, आत्मश्रद्धा, आत्मत्याग, आत्मनियंत्रण, आत्मनिर्भरता तथा आत्मज्ञान जैसे विशिष्ट गुणों का प्रादुर्भाव कर सके। स्वामी जी ने शिक्षा को परिभाषित करते हुए कहा है ''जिस शिक्षा से हम अपने जीवन का निर्माण कर सकें, चरित्र गठन कर सकें और विचारों का सामंजस्य

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 15

कर सकें वही शिक्षा कहलाने योग्य है।'' स्वामी जी के अनुसार शिक्षा बच्चे की आवश्यकता और स्वभाव के अनुसार होनी चाहिए। वे ऐसे बालकों का निर्माण चाहते थे जिनके चेहरे पर आभा, शरीर में बल, मन में प्रचंड इच्छा शक्ति, बुद्धि में पांडित्य, जीवन में स्वावलंबन, हृदय में शिवा, प्रताप, ध्रुव तथा प्रह्लाद की जीवन गाथाएँ अंकित हों और उन्हें देखकर महापुरुषों की स्मृतियाँ झंकृत हो उठें।

कैसा हो शिक्षक

बालकों की शिक्षा के लिए शिक्षकों को अपने चरित्र और व्यक्तिगत जीवन को आदर्श रूप में प्रस्तुत करना होगा। स्वामीजी इसीलिए परोपकारी पुरुषों को ही शिक्षण व्यवसाय के लिए उपयुक्त मानते थे। उनके विचारानुसार शिक्षकों के शब्दों का प्रभाव शिष्यों पर तभी होगा जब शिक्षक मन और हृदय से पवित्र होगा। सच्चा गुरु उसे माना है जो बालकों को उनकी आँखों से देख सके, उनके कानों से सुन सके और उनके मन को समझ सके। ऐसा गुरु ही अपनी आत्मा को शिष्यों की आत्मा में स्थानांतरित कर सकता है।

अनुशासन

अनुशासन स्थापना के लिए स्वामी विवेकानंद ने दंड के स्थान पर आत्मानुशासन पर विशेष बल दिया। वे चाहते थे कि विद्यार्थी में नम्रता, विनयशीलता, आचारशुद्धता, सीखने की जिज्ञासा, संघर्ष की क्षमता, ज्ञान पिपासा, एकाग्रता तथा गुरु भक्ति आदि विशेषताओं की अनिवार्यता हो।

बालिका शिक्षा

बालिका शिक्षा के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए स्वामीजी ने कहा है ''स्त्री जाति की उन्नति के बिना भारत कभी भी विकास नहीं कर सकता। उस देश व राष्ट्र के महान बनने की कोई आशा नहीं की जा सकती जहाँ नारी जाति का अपमान हो और वह अशिक्षा के बंधन से मुक्त न रह सके।'' उनकी दृष्टि में निर्धनता, दरिद्रता जनशिक्षा की राह में सबसे बड़ी बाधा है। जन शिक्षा को महत्ता प्रदान करते हुए उन्होंने कहा है ''जन शिक्षा द्वारा ही राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण किया जा सकता है। शिक्षा व्यक्ति को उसके समाज, देश और विश्व के साथ संबंधित कर मानवता की भावना का विकास

करती है। विश्व के प्रति संवेदनशील वही हो सकता हैं जो राष्ट्रहित के लिए मन, वचन और कर्म से तत्पर हो वही सच्चा भारतीय कहलाने योग्य है।

स्वामीजी ने वर्तमान शिक्षा की न्यूनताओं का वर्णन करते हुए बताया- ''आज की शिक्षा की सबसे बड़ी खामी यह है कि इसके सामने अनुकरण करने के लिए कोई निश्चित लक्ष्य नहीं है। एक चित्रकार अथवा मूर्तिकार यह जानता है कि उसे क्या बनाना है, तभी वह अपने कार्य में सफल हो पाता है। आज शिक्षक को यह स्पष्ट नहीं है कि वह किस लक्ष्य को लेकर अध्यापन कार्य कर रहा है। सभी प्रकार की शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण करना है। इसके लिए वेदांत के दर्शन को ध्यान में रखते हुए मनुष्य निर्माण की शिक्षा प्रदान करनी चाहिए।

आज की शिक्षा अच्छे डॉक्टर, इंजीनियर, प्रबंधक, प्रशासक तो तैयार कर रही है, लेकिन वो इंसान तैयार नहीं कर पा रही है जो संवेदनाओं से परिपूर्ण हो, जिसमें मानवता निवास करती हो, जो सृजनशील हो, जो समाज के पिछड़े वर्गों को ऊपर उठाने में परिपूर्ण हो। इसका नितांत अभाव है।

आज की शिक्षा अच्छे डॉक्टर, इंजीनियर, प्रबंधक, प्रशासक तो तैयार कर रही है, लेकिन वो इंसान तैयार नहीं कर पा रही है जो संवेदनाओं से परिपूर्ण हो, जिसमें मानवता निवास करती हो, जो सृजनशील हो, जो समाज के पिछड़े वर्गों को ऊपर उठाने में परिपूर्ण हो। इसका नितांत अभाव है। स्वामी जी ने विश्व शांति की परिकल्पना से अभिभूत होकर शिक्षा के क्षेत्र में विशेष परिवर्तन चाहते हुए कहा कि हम बालक को एक ऐसे नागरिक के रूप में विकसित करना चाहते हैं, जो विश्व के नागरिकों की तकलीफ, दुख-दर्द, अभाव, कष्ट, व्यथा, संताप का अनुभव कर सके। हमें ऐसा आदमी नहीं चाहिए जो मात्र अनुभव करे, पर ऐसा आदमी चाहिए जो वस्तुओं और स्थितियों को परिपूर्ण बना सके। जो प्रकृति को पूरे मन से गहराई तक समझ सके, उसमें खोज कर सके। हमें ऐसा मनुष्य चाहिए जो रुके नहीं, पर निरंतर कार्य करे और कार्यों को सही रूप में संपूर्णता तक पहुँचा सके।

एक ध्येय

स्वामीजी ने युवा पीढ़ी को संदेश दिया है कि तुम जीवन का एक ध्येय बना लो, उस पर मनन करो उसके सपने देखो, शरीर का प्रत्येक अंग उस लक्ष्य से आप्लावित हो, अन्य सभी विचारों को छोड़ो, कठिन परिश्रम करो, अगर तुम जीयो या मरो कोई गम नहीं, बिना परिणाम सोचे अपने ध्येय की पूर्ति में लगे रहो, तो मात्र छह माह में लक्ष्य की सिद्धि निश्चित होगी। स्वामीजी का विचार था कि रोगी चिकित्सक के पास जाने को तैयार नहीं हो, तो चिकित्सक ही रोगी के पास क्यों न जाए ? यदि गरीब लोग शिक्षा के निकट नहीं आ सकते, तो शिक्षा को ही उनके लिए खेतों पर, उनकी फैक्ट्री या सर्वत्र जाना होगा।

शिक्षा से सामाजिक परिवर्तन

स्वामी विवेकानंद का शैक्षिक चिंतन बहुत व्यापक था। उन्होंने धर्म की शिक्षा, नारी शिक्षा तथा जन शिक्षा पर विशेष बल दिया। वे जीवनोन्मुखी और विचारोत्तेजक शिक्षा के पक्षधर रहे हैं। वे भारतीय समाज के सुधार हेतु शिक्षा में कला, विज्ञान, साहित्य और संस्कृति ज्ञान के पोषक रहे हैं। वे शिक्षा द्वारा सामाजिक परिवर्तन से ऐसा भारत चाहते थे, जो परंपरागत अंधविश्वास, पाखंड, अकर्मण्यता, जड़ता और आधुनिक सनक तथा कमजोरियों से स्वतंत्र

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 17

देश के विकास के लिए आवश्यक है तकनीकी शिक्षा।

रहकर आगे बढ़े। स्वामी जी शिक्षा द्वारा लौकिक और पारलौकिक दोनों को जीवन के लिए तैयार करना चाहते थे। कार्य के प्रत्येक क्षेत्र में व्यावहारिक बनने की उनकी सीख रही है।

स्वामीजी के शिक्षा दर्शन के आधारभूत सिद्धांतों के अनुसार शिक्षा ऐसी हो जिससे बालक का शारीरिक, मानसिक व आत्मिक विकास हो सके। बालक के चरित्र का विकास हो, उसका मन विकसित हो, बुद्धि बढ़े और आत्मनिर्भरता की दिशा में उन्मुख हो सके। बालक व बालिकाओं की समान शिक्षा व्यवस्था हो। धार्मिक व नैतिक शिक्षा पुस्तकों के स्थान पर आचरण व संस्कारों से दी जानी चाहिए। ताकि वे लौकिक व पारलौकिक ज्ञान की शिक्षा ग्रहण कर सकें। गुरु-शिष्य का निकटतम सात्विक संबंध हो तथा शिक्षा जन शिक्षा के रूप में सर्वसाधारण को शिक्षित कर सके। उन्होंने देश को विकसित करने के लिए तकनीकी शिक्षा को महत्त्व दिया। परिवार बालक की प्रथम पाठशाला है, अतः शिक्षा यहीं से प्रारंभ हो इसके लिए परिवार संस्कारवान पाठशाला के रूप में प्रस्तुत हो सके।

इस प्रकार स्वामी विवेकानंद ने भारत राष्ट्र को सर्व शिक्षा से जाग्रत करते हुए विश्व बंधुत्व व 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को प्रगाढ़ता प्रदान की। उनका शैक्षिक चिंतन ही इस दिशा में सर्वोपरि रहा तथा विश्व स्तर पर भारतीय संस्कृति को प्रचारित करते हुए उसे अपने शैक्षिक चिंतन से लाभान्वित किया।

लेखक राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, टहुँका, जिला भीलवाड़ा(राजस्थान) में प्रधानाचार्य हैं।

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 18

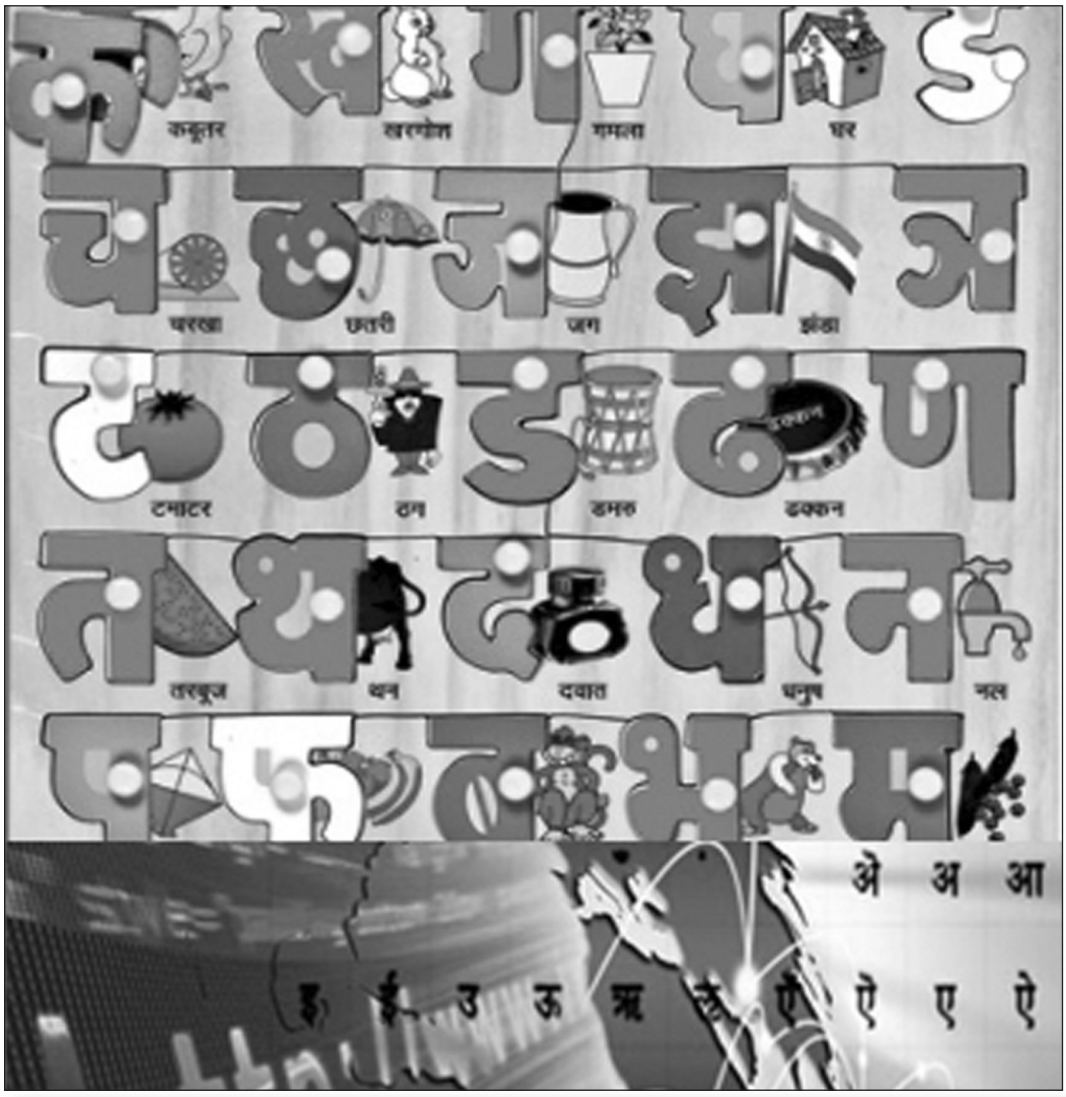

'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल' भारतेंदु हरिश्चंद्र की यह पंक्ति आज भी उतनी ही प्रेरक है जितना कि यह अंग्रेजों के शासनकाल में स्वतंत्रता सेनानियों के लिए प्रेरक होती थी। आशा थी कि देश के स्वतंत्र होने पर राजकाज व शिक्षा का माध्यम मातृ भाषा होगी, लेकिन निहित स्वार्थों के कारण मातृभाषा को उसके वैधानिक स्थान से तो वंचित किया ही गया, वरन् नागरिकों को भी उनके नैसर्गिक अधिकार से वंचित किया गया। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि आम भारतीय शिक्षा और अनुसंधान में पिछड़ गया और इन सब पर अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों का एकाधिकार-सा हो गया। प्रस्तुत है मातृभाषा में शिक्षा की आवश्यकता और उपयोगिता पर प्रकाश डालता श्री ओम प्रकाश मिश्र का यह लेख–

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 19

ओम प्रकाश मिश्र

मातृभाषा में शिक्षा

ऋग्वेद में कहा गया है कि 'मातृभूमि, मातृभाषा और मातृसंस्कृति इन तीनों की मैं आराधना करता हूँ, वे सब हमें ऐश्वर्य की तरफ प्रेरित करें,' अर्थात् तीनों राष्ट्र को ऐश्वर्यशाली बनाती हैं। (ऋ. 1/188/8)। ऋग्वेद में ही कहा गया है ''आ नो भद्राः ऋतवो यन्तु विश्वतः'' आदर्श एवं प्रेरक विचार सभी दिशाओं से हमारे पास आवें। (ऋ. 1/89/1)।

इन दोनों सूक्तों में यदि ध्यान से देखा जाए तो कोई विरोधाभास नहीं है। जहाँ एक तरफ हमारे मनीषी मातृभाषा के पक्षधर हैं तो दूसरी ओर वे सभी दिशाओं से उत्तम विचारों का सम्मान भी करते हैं।

भाषा को केवल अभिव्यक्ति का माध्यम मानना ठीक नहीं है, अपितु यह संस्कृति की धारा को, उसके प्रवाह की भी वाहक होती है। आम तौर पर भाषा को लोग जब केवल अभिव्यक्ति का माध्यम कहते हैं, तो वे भाषा से जुड़ी मिट्टी, संस्कार, पूरी सभ्यता, कालखंड की सांस्कृतिक चेतना को ध्यान में नहीं रखते हैं, जो कि उचित नहीं होगा। किसी देश की संस्कृति का तात्पर्य वहाँ के रहने वाले लोगों की जीवन पद्धति, विचार सरणि एवं रीति-रिवाजों को समेटे हुए होती है। चूंकि हमारे चिंतन का माध्यम भाषा ही होती है और सतत् चिंतन से ही संस्कृति का प्रादुर्भाव संभव होता है, अस्तु भाषा का महत्त्व अत्यधिक है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा था- ''भाषा किसी भी जाति के भीतर के कलपुर्जों का पता देती है। किसी जाति को अशक्त करने का सबसे सहज उपाय उसकी भाषा को नष्ट करना है।''

पिछले लगभग 1000 वर्षों में विदेशी आक्रांताओं के शासन में इस देश की भाषा व संस्कृति को नष्ट करने के कुप्रयास हुए। विदेशी शासकों व

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 20

साम्राज्यवादियों ने सत्ता का पूर्ण दुरुपयोग करके हमारी गुरुकुल शिक्षा पद्धति का समूल नष्ट किया। हमारे यहाँ हजारों वर्षों की शिक्षा प्रणाली जो शासन से स्वतंत्र थी, समाज उसके लिए उत्तरदायी था, उसका क्रमिक तौर पर नाश किया गया। हमारे देश में शिक्षा बेचने की चीज नहीं थी। शिक्षा के लिए कोई शुल्क या फीस नहीं होती थी। हमारे यहाँ धर्मसत्ता अथवा ज्ञान सत्ता को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया था, राजसत्ता व अर्थसत्ता उनकी अनुचरी के रूप में थी। कालांतर में अर्थ की सत्ता और राज्य की सत्ता का महत्त्व हो गया। इसी से हमारी शिक्षा, मातृभाषा, संस्कृति का अधःपतन हुआ।

लॉर्ड मैकाले ने 02 फरवरी, 1835 को ब्रिटिश संसद में कहा था- ''मैंने भारत के ओर-छोर का भ्रमण किया है और मैंने एक भी आदमी नहीं पाया जो चोर हो। इस देश में मैंने ऐसी समृद्धि, ऐसे सक्षम व्यक्ति तथा ऐसी प्रतिभा देखी है कि मैं नहीं समझता कि इस देश को विजित कर लेंगे, जब तक कि हम इसके सांस्कृतिक व नैतिक मेरूदंड को तोड़ न दें। इसलिए मैं यह प्रस्तावित करता हूँ कि हम भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति एवं संस्कृति को बदल दें, जिससे भारतवासी यह सोचने लगें कि जो विदेशी और अंग्रेजी में है, वह उनके आचार-विचार से अच्छा और बेहतर है, तो वे आत्मसम्मान एवं संस्कृति खो देंगे तथा एक पराधीन कौम बन जाएंगे, जो हमारी चाहत है ।'' और परिणाम भी विदेशी सत्ता की परिकल्पना व विचारों के अनुरूप ही बनते गए। अंग्रेजी शिक्षा व संस्कृति ने धीरे-धीरे भारत की मातृभाषा की शिक्षा, संस्कारों व संस्कृति के नाश हेतु कुप्रयास किए। अंग्रेजी भाषा व अंग्रेजियत, विशेषकर भारत के उच्चवर्ग में छा गई।

अंग्रेजों के समय में अंग्रेजी भाषा का प्रभुत्व उच्चवर्ग के माध्यम से स्थापित किया गया। शिक्षा का माध्यम, विशेषतः उच्च शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, कानूनी शिक्षा, चिकित्सा शिक्षा एवं विशेषज्ञता की सारी शिक्षा लगभग अंग्रेजी में ही दी जाने लगी। उससे मैकॉले व आगे ब्रिटिश सत्ता को यह लक्ष्य प्राप्त करना आसान हो गए कि काले अंग्रेज (यानी भारतीय), अच्छे क्लर्क , छोटे अधिकारी तथा शासन व्यवस्था में निचले पायदान पर अंग्रेजों के पुर्जे बन गए। यह सब मातृभाषा में शिक्षा को समाप्त करके ही हासिल किया जा सका।

अंग्रेजों के समय में अंग्रेजी भाषा का प्रभुत्व उच्चवर्ग के माध्यम से स्थापित किया गया। शिक्षा का माध्यम, विशेषतः उच्च शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, कानूनी शिक्षा, चिकित्सा शिक्षा एवं विशेषज्ञता की सारी शिक्षा लगभग अंग्रेजी में ही दी जाने लगी। जिससे अंग्रेजों के शोषण तंत्र अंग्रेजी व अंग्रेजियत के संस्कार हावी होते गए।

उस समय सब लोग यह समझने लगे कि यदि उन्नति करनी है तो मातृभाषा की जगह केवल अंग्रेजी ही कल्याण करा सकती है। अस्तु, अंग्रेजों के शोषण तंत्र अंग्रेजी व अंग्रेजियत के संस्कार हावी होते गए।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यह भ्रम बहुत से स्तरों पर फैलाया गया कि भारतीय भाषाओं में एकता संभव नहीं है, इसलिए अंग्रेजी को बनाए रखना आवश्यक है। यह एक मिथ्या सोच थी। विदेशी साम्राज्यवाद की प्रतीक भाषा अंग्रेजी से भारत माता की संतान भाषाओं में कैसे एकता स्थापित हो सकती थी? भारत माता की संतानों का उज्ज्वल भविष्य भारतीय भाषाओं के मध्य तादात्म्य स्थापित करके ही हो सकता था।

काका कालेलकर के शब्दों में –''भारत की स्वतंत्रता व भारत की एकता एक दूसरे पर निर्भर हैं। भारत की एकता के लिए भाषा के सामान्य रूपों की ओर हमें लौटना चाहिए। हमें दूसरी भाषाएँ भी सीखनी चाहिएँ।

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 21

भारत की स्वतंत्रता व भारत की एकता एक दूसरे पर निर्भर हैं। भारत की एकता के लिए भाषा के सामान्य रूपों की ओर हमें लौटना चाहिए। हमें दूसरी भाषाएँ भी सीखनी चाहिएँ। यूरोप में अंग्रेज, फ्रेंच, जर्मन व रूसी एक दूसरे से अनुकूल शब्द ले लेते हैं। इसी तरह भारत में हिंदी, बांग्ला, तेलुगु, कन्नड़ वाले भी कर सकते हैं। ऐसा करने से हम एक-दूसरे के और नजदीक भी आ सकेंगे।

- काका कालेलकर

यूरोप में अंग्रेज, फ्रेंच, जर्मन व रूसी एक दूसरे से अनुकूल शब्द ले लेते हैं। इसी तरह भारत में हिंदी, बांग्ला, तेलुगु, कन्नड़ वाले भी कर सकते हैं। ऐसा करने से हम एक-दूसरे के और नजदीक भी आ सकेंगे।''

जब औपनिवेशिक शासन में उच्चशिक्षा व प्रशासन की भाषा बन गयी थी तो स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यह भ्रम भी फैलाया गई कि रोजगार प्राप्ति (विशेषतः उच्च पदों हेतु) अंग्रेजी आवश्यक है। यह भ्रम कम से कम प्रशासनिक सेवाओं के मामले में तो सच भी था। आगे चलकर दौलत सिंह कोठारी समिति की महत्त्वपूर्ण अनुशंसा के आधार पर सिविल सेवा में संविधान में आठवीं अनुसूची में उल्लिखित सभी भाषाओं और अंग्रेजी में उत्तर देने की छूट दी गई, जिससे अपनी मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त किए विद्यार्थी भी सिविल सेवा में चयनित होने लगे, यद्यपि अभी भी उसमें कठिनाइयाँ आती हैं। परंतु निजी क्षेत्र, कॉरपोरेट क्षेत्र, न्यायालयों, चिकित्सा क्षेत्र आदि में अंग्रेजी के प्रभुत्व के कारण, सब तरफ कुकुरमुत्तों की तरह अंग्रेजी भाषा में शिक्षा देने वाले कान्वेंट स्कूल खुल रहे हैं। जहाँ छात्रों से भारी भरकम फीस/भारी स्कूली डोनेशन सब कुछ है, हाँ पढ़ाने वाले न तो अच्छी हिंदी जानते हैं, न ही अंग्रेजी। इससे पूरी शिक्षा व्यवस्था चरमराने की स्थिति में आती जा रही है।

यदि बच्चा मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करता है तो उसमें उसका नैसर्गिक मानसिक व बहुविध विकास होता है। वरना अंग्रेजी भाषा के स्कूलों में तोता रटंत की परंपरा का पाठ अनवरत चलता जाता है। बच्चों में हीन भावना की ग्रंथि भी आती है। घर व परिवार व समाज के मध्य, प्राथमिक शिक्षा में तादात्म्य न होने से सामाजिक समस्याएँ भी बढ़ रही हैं।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नीतियों के फलस्वरूप एवं कालांतर में भी भारतीय भाषाओं में शिक्षा का उपयुक्त वातावरण न बन पाने के कारण भारतीय भाषाओं का क्रमिक विनाश करने का प्रयत्न हुआ। 1991 की भारत की जनगणना के भाषा खंड की प्रस्तावना में कहा गया कि-''यदि एक भाषा मरती है तो एक जाति का हजारों वर्षों का अनुभव, इतिहास, उसकी सांस्कृतिक विविधता और पहचान ही सदा-सदा के लिए समाप्त हो जाती है।''

भारत की मातृभाषाओं के लिए सर्वांगीण प्रयास करके उपयुक्त वातावरण बनाने की महती आवश्यकता है। जब तक हमारी अपनी मातृभाषा में हमारी शिक्षा विकसित होगी और रहेगी, तब तक हमारी संस्कृति पल्लवित होती रहेगी। जब तक हमारी संस्कृति समृद्ध रहेगी, तब तक हम अपनी भूमि पर मजबूती से न केवल बने रहेंगे, वरन् सर्वांगीण विकास भी करेंगे।

आजकल उच्च शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, कानूनी शिक्षा,

चिकित्सा शिक्षा में मातृभाषा का जो प्रसार हो रहा है, वह अधिकांशतः अनुवाद प्रधान ही है। मेरा यह मानना है कि विज्ञान, कानून, तकनीकी विषयों संबंधी पाठ्य पुस्तकों में अनुवाद को 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' के रूप में नहीं किया जाना चाहिए। बल्कि पूरी पुस्तक को सांगोपांग पढ़कर आत्मसात् करने के बाद उसे बोलचाल की भाषा में अनुवाद किया जाता है, तो अनुवाद के पढ़ने से भी ज्ञान एवं आनंद की प्राप्ति हो सकती है। मैंने स्वयं अर्थशास्त्र और कानून की पुस्तकों के अपने एम.ए. तथा एल.एल.बी. करते समय जो अनुवाद पढ़े थे, वे अधिकांशतः बोधगम्य नहीं थे। कई बार तो मूल पुस्तकें अधिक साफ दृष्टि प्रदान करती थीं।

एक यह भी भ्रम फैलाया गया कि अंग्रेजी भाषा में शिक्षा से ही भारत का बौद्धिक विकास होगा। यदि एक दृष्टि समूचे संसार पर डालें, तो पता चलेगा कि जापान, चीन, रूस, इजरायल आदि देश अपनी मातृभाषा में विज्ञान, प्रौद्योगिकी की शिक्षा के बल पर ही शिखर तक पहुँच सके हैं। इजराइल की जनसंख्या भारत की जनसंख्या का केवल 0.6 प्रतिशत है। उन्होंने अपनी मातृभाषा हिब्रू में कार्य करके एवं अदम्य राष्ट्रवाद की भावना से कार्य किया, उन्हें अब तक 16 नोबेल पुरस्कार मिल चुके हैं और हमें केवल एक। हमें अंग्रेजी भाषा की गुलामी की मानसिकता को पूर्णतः छोड़ना होगा, तभी हमारे राष्ट्र की वर्तमान युवा पीढ़ी व आने वाली संततियाँ नैसर्गिक रूप से विकसित राष्ट्र की आधारशिला रखेंगी।

भाषा किसी भी जाति के भीतर के कलपुर्जों का पता देती है। किसी जाति को अशक्त करने का सबसे सहज उपाय उसकी भाषा को नष्ट करना है।

- आचार्य रामचंद्र शुक्ल

यह बात कम महत्त्व की नहीं है कि समस्त विश्व की सकल घरेलू उत्पाद की श्रेणी में वे 20 राष्ट्र आगे हैं, जिनके यहाँ समस्त कार्य केवल मातृभाषा में होता है। अतः कहा जा सकता है कि राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर व सरकारी/गैर सरकारी कार्य पद्धति, कार्य योजना व कार्य निष्पादन में मातृभाषा का ही योगदान रहे।

शिक्षा के प्रसार एवं मातृभाषा में शिक्षा के लिए स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद, महर्षि अरविंद, पं. मदन मोहन मालवीय, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, बाल कृष्ण भट्ट, भारतेंदु हरिशचंद्र आदि मनीषियों ने अपने-अपने तरीके से भारत में अतुलनीय योगदान दिया।

अंग्रेजी भाषा के माध्यम से वैज्ञानिक व प्रौद्योगिकीय शिक्षा चूंकि नैसर्गिक सोच, आविष्कार क्षमता विकसित होती है, इसलिए मातृभाषा से ही सब प्रकार की शिक्षा प्रदान किया जाना श्रेष्ठ है। डॉ. ए.पी.जी. अब्दुल कलाम ने कहा था कि चूँकि उन्होंने अपनी मातृभाषा में विज्ञान तथा गणित की शिक्षा पाई थी, इसीलिए वे अच्छे कोटि के वैज्ञानिक बन सके। रवींद्र नाथ टैगोर ने कहा था कि अपनी भाषा में शिक्षा पाना जन्मसिद्ध अधिकार है। वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बसु का उदाहरण भी मातृभाषा में शिक्षा के लिए एक अच्छा उदाहरण है।

प्रसिद्ध चिंतक स्वर्गीय राजीव दीक्षित के शब्दों में ''भारत शासन की व्यवस्था अंग्रेजी में चलती है, भारत के न्यायालयों में झगडे सुलझाने के फैसले अंग्रेजी में होते हैं, पक्ष और विपक्ष की बहस-दलीलें अंग्रेजी में दी जाती हैं, भारत के चिकित्सक मरीजों को, जो अंग्रेजी नहीं जानते हैं, उनको जो लिखकर देते हैं वो कागज

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 23

जापान, चीन, रूस, इजरायल आदि देश अपनी मातृभाषा में विज्ञान प्रौद्योगिकी की शिक्षा के बल पर ही शिखर तक पहुँच सके हैं। इजराइल की जनसंख्या भारत की तुलना में 0.6 प्रतिशत है। अपनी मातृभाषा हिब्रू में कार्य करके उन्हें अब तक 16 नोबेल पुरस्कार मिल चुके हैं और हम केवल एक प्राप्त कर सके हैं।

की पुर्जी अंग्रेजी में होती है, हमारे देश के प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों को डंडे मारकर अंग्रेजी सिखाई जाती है, अगर वो अंग्रेजी न पढ़ना चाहें तो जबरदस्ती अंग्रेजी में पढ़ाया जाता है और वे फेल होते रहते हैं, हमारे शीर्ष वैज्ञानिक संस्थानों में अंग्रेजी है, हमारे देश के नीचे से ऊपर तक हर स्तर पर अंग्रेजी-अंग्रेजी है।''

यह स्थिति की अतिरंजना नहीं, वरन् वस्तुपरक आकलन है। स्वतंत्रता प्राप्ति के 70 वर्षों बाद भी शिक्षा के क्षेत्र में एक विदेशी भाषा (जो कि परतंत्रता की प्रतीक है) का आधिपत्य जन मानस व विशेषतः विद्यार्थियों के लिए अत्यंत कष्टदायक है। उनकी नैसर्गिक प्रतिभा बहुत बार विदेशी भाषा के कारण पूर्णतः निखर नहीं पाती है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र की प्रसिद्ध पंक्तियाँ आज भी सत्य हैं :–

''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा - ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ।।
अंग्रेजी पढ़ि के जदपि, सब गुण होत प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिन, रहत हीन के हीन।।

लेखक इलाहाबाद उच्च न्यायालय में अधिवक्ता हैं।

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 24

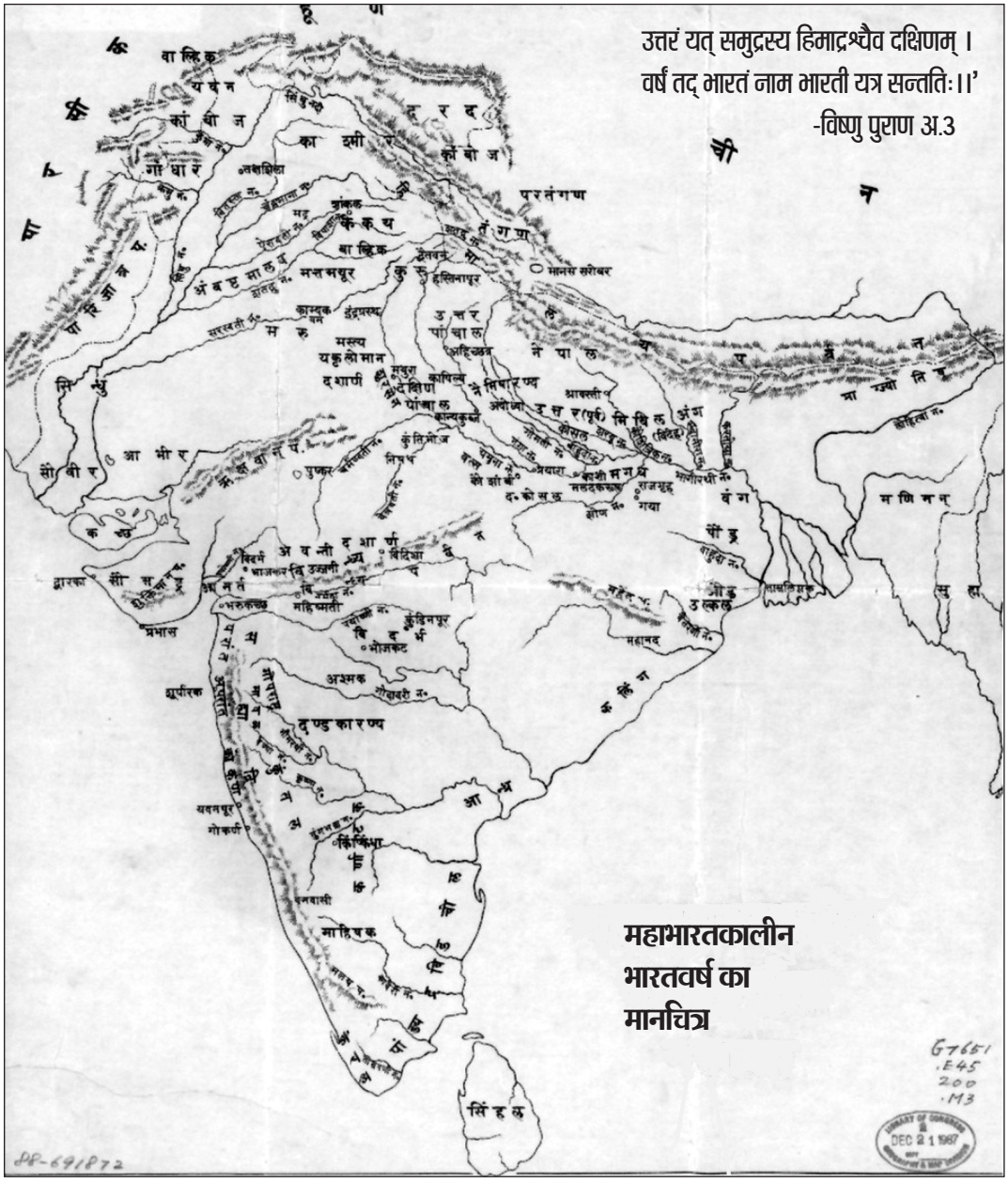

पुराणों में भारतवर्ष का पूर्ण भौगोलिक परिचय (देश का नामकरण, पर्वत, नदियों, जनपदों व निवासियों आदि का उल्लेख) मिलता है। हिमालय के वनों, उपवनों, गिरि-कंदराओं एवं सरोवरों का भी संक्षिप्त परिचय सर्वत्र, प्राप्त होता है। सत्रहवीं शताब्दी में समर्थ रामदास स्वामी ने 'दासबोध' में राष्ट्रीय एकात्मता की बात कही और आधुनिक काल में देश की सभी भाषाओं में राष्ट्रीय एकता की गीत गाए गए।

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 25

भारतीय साहित्य में भौगोलिक व भावात्मक एकात्मता

हम सब भारत माता की संतान हैं। हमारा अपना एक देश है। एक संस्कृति है। पुराणों के साक्ष्य से सरस्वती और दृषद्वती नदियों के मध्य के प्रदेश ब्रह्मवर्त क्षेत्र में ही सृष्टि की रचना हुई। यहीं हमारा समाज सृष्टि की कोख से जनमा। धरती माँ पर सूरज की पहली किरण पड़ने के साथ ही हम जनमे। यहीं से सर्वप्रथम राजा पृथु ने पृथ्वी का शासन सँभाला। मनु ने पृथूदक में ही मानवधर्मशास्त्र का निर्माण कर मानवमात्र के लिए नियमों का वर्णन किया। एक प्राकृतिक इकाई के रूप में आसेतु हिमाचल यह मातृभूमि और उसकी यह संतान विश्व में हिंदू समाज (आर्य व भारतीय) के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

हमने यहाँ संस्कृति की जो धारा प्रवाहित की, वह गंगा के समान सर्वसमावेशी है। उसमें अनेक धाराएँ समय-समय पर मिलीं, किंतु वे सभी धाराएँ मूल धारा के साथ रच-बस गईं। यह पवित्र धारा सदा प्रवाहित रहे, इसलिए संपूर्ण समाज ने साधना की। किसी ने बलिदान दिया, किसी ने तपस्या की। किसी ने ज्ञान दिया। किसी ने शोध किया तो किसी ने संपूर्ण समाज की अस्मिता बनाए रखने की समझ दी। किसी ने छूआछूत और ऊँच-नीच की दरारें पाटीं। किसी ने सह-चिंतन की चेतना जगाई। इन सब प्रयासों के परिणामस्वरूप भारत संसार भर में महान बना। इसकी महानता को जीवित रखने के लिए हमने कालांतर में कठोर से

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 26

कठोर कर्तव्य-कर्मों को निभाया। समय-समय पर कोटि-कोटि सिर चढ़ाकर हमने इसकी रक्षा की। शोषित-पीड़ित दुखी मानवता के कष्टों के निवारण के लिए सतत चेष्टा की। विपदाओं की भयंकर आँधी में भी अपने राष्ट्रधर्म हेतु सीना तानकर सदैव डटे रहे।

भू-भाग नहीं, विश्व-मानव के हृदय को जीतकर तथा अपनी संस्कृति की उज्ज्वल रश्मियाँ फैलाकर जगद्गुरु के आसन पर विराजमान हुए। नवद्वीप, नालंदा, विक्रमशिला, तक्षशिला, मिथिला, वैशाली, सारनाथ, श्रावस्ती और श्रीनगर से शिक्षा, दर्शन, साहित्य और कला की किरणें सर्वत्र विकीर्ण होती रहीं। भारत

साहित्य में मानव-मात्र की हित-साधना का भाव सन्निहित होने के कारण ही भारतीय मनीषा ने इसकी मूलभूत विषेशताएँ इस प्रकार स्वीकार की हैं- हित-साधन करना, मनोवृत्तियों को तृप्त करना तथा उन्नयन करना।

की उसी विरासत और महानता को सँजोए रखने का कार्य साहित्य ने सँभाला। हमारी विपुल ज्ञानराशि का संचय कर साहित्य अत्यंत समृद्ध बना रहा। हमारे सारस्वत मनीषियों ने अपनी तपःपूत अस्थियों की मशाल जलाकर पवित्र भस्मों की स्याही से काल के भाल पर अमिट लेखनी चलाकर मधुमती भूमिका में लीन होकर शाश्वत साहित्य की सारस्वत सृष्टि की। भारतीय मनीषा ने भारतीय साहित्य की मूलभूत विशेषता के रूप में मानवता की हितसाधना के मंगल भाव को स्वीकार किया।

भारतीय साहित्य वस्तुतः भारत के अंतस् का नवनीत है, जो परम सरस, परम स्निग्ध, परम मधुर एवं चरम भक्ति से समन्वित है। दूसरे शब्दों में भारतीय साहित्य राष्ट्र के जीवन पुष्प का मधु मकरंद है, जिसे विरले ही राष्ट्रभावापन्न, संवेदनशील, कला संपन्न एवं सहृदय साहित्य मनीषी समाज के सम्मुख समुपस्थित कर सकते हैं।

साहित्य में मानव-मात्र की हित–साधना का भाव सन्निहित होने के कारण ही भारतीय मनीषा ने इसकी मूलभूत विषेशताएँ इस प्रकार स्वीकार की हैं- हित-साधन करना, मनोवृत्तियों को तृप्त करना तथा उन्नयन करना। इनमें भी 'हित' शब्द को मूल में मानकर साहित्य शब्द का मूल्याँकन किया गया है।

- *'हितं पिहितं तत् साहित्यम्'* – साहित्य में हित पिहित (छिपा) होता है, जिसे साहित्यकार ही खोज निकालता है।
- *'हितं सन्निहितं तत् साहित्यम्'* -हित से सन्निहित करना साहित्य-सर्जना का आवश्यक गुणधर्म है।
- *'हितं सम्पादयति इति साहित्यम्'*-साहित्य द्वारा हित का संपादन अथवा उत्पादन संभाव्य है। हित की साधना वही साहित्य कर सकता है, जिसका मूल स्रोत सत् की साधना से ही परम शांति और मंगल संभव है। आज जबकि जनमानस साम्यवादी वर्ग-संघर्ष की भावना से क्षुब्ध है, 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद'पर आधारित जीवन-दर्शन परम सुख की प्राप्ति कराने में निष्फल सिद्ध हुआ है। भारतीय मनीषा द्वाराआख्यायित साहित्य ही मानवता का जीवन संबल बन सकता है। भारतीय साहित्य की कल्याणी वाणी ही तापदग्ध मानवता के लिए शीतलोपचार कर सकेगी। तुलसी ने इसे 'मंगल करनि कलिमल हरनि' कहा है।

साहित्य की सद्भावनासंभूत मंगल वाणी द्वारा समाज की द्वंद्वात्मक स्थिति शांत हो जाती है और मानव परस्पर एकात्मता के स्नेहसूत्र में आबद्ध हो जाता है। साहित्य की सार्थकता इसी बात में है कि वह जन-जन

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 27

के जीवन में मंगल का, श्रेयस् का और समरसता का संचार करे। वस्तुतः संपूर्ण भारतीय साहित्य हमारी सुदीर्घ सांस्कृतिक साधना का ही प्रतिफल है।

वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत, पुराण-साहित्य, जातक साहित्य एवं पैशाची प्राकृत में लिखित 'बृहत्कथाचरितसागर' का भावात्मक तथा भौगोलिक एकता का स्वर प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण अवदान है। समग्र आधुनिक भारतीय वाङ्मय को भी राष्ट्रीय प्रेरणा प्रदान करने में इनका प्रमुख योगदान है।

ऋग्वेद (1.164.41) के समन्वयवादी सिद्धांत 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' का आशय लेकर तथा अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त की भौमिक उज्ज्वल परंपरा (12.1) के सारस्वत स्रोत में अवगाहन कर परवर्ती साहित्यकारों ने एकात्मता के प्रति आस्था के स्वरों का उच्चारण किया। उनके गौरवगान इस प्रकार गूंजेः-

यस्यां पूर्वे पूर्वजना
विचक्रिरे यस्यांदेवा असुरानभ्यवर्तयन्।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं
वर्चः पृथिवी नो दधातु।।

- जहाँ हमारे पूर्वजों ने अद्भुत पराक्रम किया, जहाँ देवताओं ने असुरों का ध्वंस किया, वह हमारी जन्मभूमि हमें ऐश्वर्य ओर तेज दे।
- हे शत्रुमर्दिनी भू-माता! जो हमसे द्वेष करते हैं, जो सेना लाकर हम पर आक्रमण करते हैं और हमें नाश करने के लिए तैयार बैठे हैं, उनका तू नाश कर।
- मैं अपनी मातृभूमि के लिए और उसके दुःख-विमोचन के लिए सब प्रकार के कष्ट भोगने को तैयार हूँ- 'अहमस्मि सहमान उत्तरोनाम भूम्याम्'।

'ब्रह्मपुराण' के सत्ताइसवें अध्याय का नाम ही 'भारतवर्षानुकीर्तनम्' है। राष्ट्रीय साहित्य का यह रूप और हिमालय, गंगा तथा समुद्र के उल्लेख हमारे प्राचीन साहित्य का उपजीव्य हैं। सभी साहित्यकार इन सब

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 28

दिशाओं के वर्णन करते रहे हैं। कालिदास के लिए क्षिप्रा, वेत्रवती उतनी ही पवित्र है, जितना देवाधिदेव हिमालय। बाणभट्ट के लिए विंध्याटवी और पंडितराज जगन्नाथ के लिए गंगा कितनी महत्त्वपूर्ण है?

पुराणों में भारतवर्ष का पूर्ण भौगोलिक परिचय (देश का नामकरण, पर्वत, नदियों, जनपदों और यहाँ के निवासियों आदि का उल्लेख) मिलता है। हिमालय के वनों, उपवनों, गिरि-कंदराओं एवं सरोवरों का भी संक्षिप्त परिचय सर्वत्र प्राप्त होता है। प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्त्व की अधुनातन गवेषणाओं के कारण उन भौगोलिक विवरणों की सत्यता अब उद्घाटित और प्रमाणित होती जा रही है। इस कल्पना मिश्रित कथाप्रवाह में कथाकार ने आलंकारिक भाषा में भारत के नामकरण एवं भौगोलिक उपादानों का भी सांगोपांग विस्तृत विवरण नाना प्रकार से प्रस्तुत किया है।

पौराणिक उद्धरणों से स्पष्ट है कि भारत को समुद्र से उत्तर और हिमालय से दक्षिण बतलाया गया है। पुराण-रचनाकाल में भारत बहुत अधिक विस्तृत था। वर्तमान भारत के स्वरूप के साथ उसका पूर्णतः सामंजस्य नहीं हो सकता। आज तो अफगानिस्तान, पाकिस्तान, नेपाल, बर्मा तथा बांग्लादेश के अलग कर दिए जाने से भारत छोटा हो गया है।

'नारदपुराण' के अनुसार भारतवर्ष क्षीरोदधि के उत्तर में तथा हिमाद्रि के दक्षिण में स्थित है। वह समस्त कर्मों का फल देनेवाला है–

'क्षीरोदधेरुत्तरं यद् हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्
शेयं तद् भारतवर्षं सर्वकर्म फलप्रदम्।।'

'अग्निपुराण' के साक्ष्य से समुद्र के उत्तर और हिमाद्रि से दक्षिण, नव सहस्र योजन में विस्तृत जो प्रदेश है, वह भारतवर्ष है। भारत की संतति का नाम भारती है। लगभग यही परिभाषा विष्णु, वायु, ब्रह्म, ब्रह्मांड, ब्रह्मवैवर्त तथा लिंग आदि पुराणों में सामान्य पाठांतर के रूप में मिलती है। इनमें विष्णुपुराण का पाठ प्रशस्त है:

'उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रश्चैव दक्षिणम् ।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।।'

(विष्णु. अ.3)

पौराणिक उद्धरणों से स्पष्ट है कि भारत को समुद्र से उत्तर और हिमालय से दक्षिण बतलाया गया है। पुराण-रचनाकाल में भारत बहुत अधिक विस्तृत था। वर्तमान भारत के स्वरूप के साथ उसका पूर्णतः सामंजस्य नहीं हो सकता। आज तो अफगानिस्तान, पाकिस्तान, नेपाल, बर्मा तथा बांग्लादेश के अलग कर दिए जाने से भारत छोटा हो गया है। पश्चिमी भारत के कई तीर्थस्थान, सिंधुनद, तक्षशिला एवं पांडवों का जन्मस्थान भी पाकिस्तान में है।

विभिन्न पुराणों में पर्वतों के नामों की विस्तृत सूची मिलती है। इन पर्वतों का दो रूपों में उल्लेख है– कुलपर्वत एवं वर्षपर्वत। 'विष्णुपुराण' के अनुसार कुलपर्वत सात हैं

'महेन्द्रोमलयः सह्यः शुक्तिमान ऋक्षपर्वतः।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः।।'

इनके अतिरिक्त 'वामनपुराण' में बीस तथा 'श्रीमद्भागवत' में अठारह पर्वतों का उल्लेख है। 'पद्मपुराण' (आदि खंड, अ.7), 'विष्णुपुराण' (द्वि.अं.अ. 3) तथा 'श्रीमद्भागवत पुराण' के पंचम स्कंध (रेवाखंड) में इनकी विस्तृत चर्चा है। सभी पुराणों के अनुशीलन करने पर विद्वानों ने 205 जनपदों की तालिका तैयार की है। 'वायुपुराण' में मध्यदेशीय, उदीच्य, प्राच्य, दक्षिणापथ, अपरांतक, विंध्यपृष्ठाश्रय तथा पर्वताश्रय इन सात वर्गों में बाँटकर जनपदों का उल्लेख किया गया है। इनमें से आज भी कई उसी

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 29

प्रकार प्रसिद्ध हैं और बहुत से नाम आक्रांताओं ने बदल डाले हैं। फिर भी, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल जैसे शोधक विद्वान ने 'मार्कण्डेय पुराण' का सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत करते समय उनके प्रचलित नामों को प्रदर्शित किया है।

लगभग 1318 ई. में पुरानी मैथिली भाषा में 'वर्णरत्नाकर' नामक एक कविशिक्षाविषयक ग्रंथ कविशेखर ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने लिखा। इसका स्वरूप सांस्कृतिक विश्वकोश सरीखा है। अतएव इसमें भौगोलिक नामों की भी भरमार है। इसके अध्ययन से तत्कालीन सांस्कृतिक भारत का चित्र मिल जाता है। इसके पूर्ववर्ती ग्रंथों में 'मानसोल्लास', 'बृहत्संहिता' तथा प्राकृत ग्रंथों में 'अंगविज्जा' एवं प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ में 'सभाशृंगार' तथा 'वर्णकसमुच्चय' (समकालीन) आदि भी अखंड भारत के भौगोलिक चित्रण के लिए उपादेय हैं।

वस्तुतः मध्ययुगीन साहित्य में हमें संस्कृत तथा अपनी प्रादेशिक मातृभाषा में एक-से अधिकार से रचना करनेवाले कई कवि मिलते हैं। त्यागराज के पद संस्कृत और तेलुगु में हैं। स्वाति तिरुनाल की रचना मलयालम

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 30

सत्रहवीं शताब्दी में समर्थ रामदास स्वामी ने 'दासबोध' में राष्ट्रीय एकात्मता की बात कही। अशोक और विक्रमादित्य के बाद छत्रपति शिवाजी को ही वह मान मिला। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'भारत दुर्दशा' गीत गाकर परतंत्रता की जंजीरे तोड़ने का आह्वान् किया। दयानंद सरस्वती ने आर्यधर्म की प्रतिष्ठा की। बंकिमचंद्र ने 'वंदेमातरम्' गीत द्वारा मातृभक्ति के माध्यम से राष्ट्रभक्ति के बीजवपन किए।

और हिंदी में है। नामदेव के पद मराठी, हिंदी और पंजाबी में मिलते हैं। गुरुगोविंद सिंह ने पंजाबी के साथ-साथ ब्रजभाषा में भी प्रेरक रचनाएँ कीं। तुलसीदास ने अवधी और ब्रज में मिश्रित युगप्रवर्तक गेय महाकाव्य 'रामचरितमानस' की रचना की। इनसे भी पूर्व डिंगल बोली में वीर रस की रचना करनेवाले चंद, मैथिली में लोकप्रिय गान लिखने वाले तथा कृष्णभक्ति से बंगाल एवं गुजरात को प्रभावित करनेवाले मैथिल कवि विद्यापति, राजस्थानी में मीरा, बुंदेली में ईसुरी, निमाड़ी में संतसिंगाजी तथा मालवी में मानसिंह 'राही' मिलते हैं। इन साहित्यकारों ने अपने को एक प्रदेश, एक भाषा, एक संप्रदाय-विशेष से प्रतिबद्ध नहीं किया। वे राष्ट्रीयता के पुजारी थे।

सत्रहवीं शताब्दी में समर्थ रामदास स्वामी ने 'दासबोध' में राष्ट्रीय एकात्मता की बात कही। अशोक और विक्रमादित्य के बाद छत्रपति शिवाजी को ही वह मान मिला। फिर, सन् सत्तावन (1857 ई.) के स्वातंत्र्य युद्ध में देश अपनी राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा के लिए अंग्रेज साम्राज्य के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ। लेकिन, घर के भेदिए ने फूट डाल दी। उधर पंजाब में रामसिंह कूका, तो महाराष्ट्र में फड़के बंधुओं ने आजादी के दीप जलाते हुए बलिदान दिए। उसी काल में भारतीय साहित्य में नवीनचंद्र सेन ने 'पलाशीर युद्ध' तथा पूना की घनघोर अकाल में दुर्दशा का चित्रण करते हुए मराठी पोवाड़े लिखे गए। ज्योतिबा फुले ने राष्ट्र-जागरण के शंख फूंके। गुजरात के भारतेंदु 'नर्मद' ने 'हिंदुओनी पड़ताई' जैसी रचनाएँ लिखीं। राजनिष्ठा और राष्ट्रनिष्ठा दोनों प्रकार की रचनाएँ लिखनेवाले भी कम नहीं थे। काशी में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'भारत दुर्दशा' गीत गाकर परतंत्रता की जंजीर तोड़ने का आह्वान किया। दयानंद सरस्वती ने आर्यधर्म की प्रतिष्ठा की। दादाभाई नौरोजी ने स्वदेशी भावना का मान बढ़ाया। परमहंस रामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानंद ने वेदांत का प्रचार करके मानव की गरिमा को ऊँचा उठाया। सांस्कृतिक पुनर्जागरण का शंख सबको सुनाई पड़ने लगा। राष्ट्रीय साहित्य-लेखन का सूत्रपात हुआ। बंकिमचंद्र ने 'वंदेमातरम्' गीत द्वारा मातृभक्ति के माध्यम से राष्ट्रभक्ति के बीजवपन किए। बांग्ला के अन्य साहित्यकारों में सत्येंद्रनाथ दत्त, डीएल राय तथा सुकांत भट्टाचार्य ने क्रांति के गान गाए। गुजराती के नर्मद, मराठी के 'विनायक', शाहीर गोविंद, स्वातंत्र्यवीर सावरकर, काका कालेलकर, साने गुरुजी, पंजाबी के भाई वीर सिंह, कश्मीरी के महजूर, हिंदी के बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', एक 'भारतीय आत्मा'

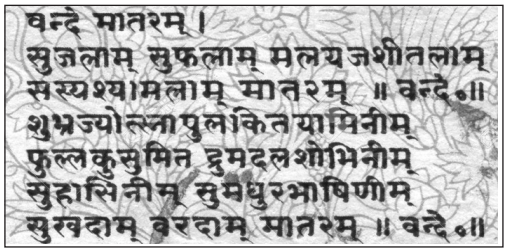

माखनलाल चतुर्वेदी, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, उड़िया के गोपबंधु दास, कन्नड़ के पंजे मंगेश पै, तेलुगु

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 31

के अप्पाराव, मलयालम के बल्लतोल तथा तमिल के सुब्रमण्यम् भारती ने राष्ट्रीय एकात्मता के स्वर का उच्चारण किया। राष्ट्रीय एकात्मबोध के आस्थावादी स्वर दशों दिशाओं में गूँज उठे–

'जाग उठा है आज देश का वह सोया अभिमान।
प्राची की चंचल किरणों से आया स्वर्ण विहान।'

महाकवि जयशंकर प्रसाद विरचित 'अरुण यह मधुमय देश हमारा। जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।' नर्मद के गान, रवींद्रनाथ के उद्‌बोधन ('भारत तीर्थ' में संकलित 'एई भारतेर महामानवेर तीरे') तथा क्रांतद्रष्टा निराला का जागरण-गीत 'जागो फिर एक बार', डी.एल. राय का 'सकल देशेर रानी से जे आमार जन्मभूमि' तथा नजरुल इस्लाम की 'अग्निवीणा' आदि इसी भारतीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण के प्रसाद हैं। वर्तमान युग के राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' द्वारा जागरण का शंख फूंका–'हम कौन थे क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी? आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।' वर्तमान युग के अन्य हिंदी कवियों में गणेश शंकर विद्यार्थी, सुमित्रानंदन पंत, रामधारी सिंह 'दिनकर', गोपाल सिंह 'नेपाली', पं. सोहनलाल द्विवेदी, द्विज जनार्दन प्रसाद, सुभद्रा कुमारी चौहान, रामदयाल पांडेय, रघुवीर सिंह, आरसी प्रसाद सिंह तथा संस्कृत के मनीषी ऋषिजीवी महामहोपाध्याय दामोदर सातवलेकर, डॉ. वर्णेकर एवं पद्मश्री डॉ. वाकणकर प्रभृति अनेक क्रांतदर्शी मनीषियों ने राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान, स्वदेशाभिमान का मान तथा भारतभक्ति की मंगल चेतना के जागरण के लिए भारतमाता के प्राणवंत स्वरूप की उपासना के गान गाए और जनजीवन में जीवनमूल्यों के प्रति आस्था का संचार किया। इन सारस्वत कवियों की वाणी में भारत के शाश्वत तत्त्व--प्रसाद, ओज और माधुर्यमय शैलियों में अभिव्यक्त

सुब्रमण्यम् भारती

हुए। इससे भारती को ऐसा अयन मिला, आस्था को ऐसा स्वर मिला, भारत-भक्ति का ऐसा स्रोत फूटा कि जनजीवन राष्ट्रीय चेतना से आप्लावित हो उठी। उनमें नवस्फूर्ति भासभान हो उठी। स्वामी विवेकानंद द्वारा प्रदत्त मंत्र 'उत्तिष्ठत् जाग्रत प्राप्य वरान्नबोधत' का व्यापक बोध हुआ। राष्ट्रीय चेतना के स्फुरण का संचार हुआ, जो उन कवियों का अभीष्ट था। मातृभूमि देवी के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। नवयुग के वैतालिक भारतेंदु के कंठ से मिलाकर महाप्राण निराला ने वंदनगान गाया-

'भारति जय विजय करे। कनक शस्य कमल धरे।
लंका पदतल शतदल। गर्जितोर्मि सागर जल।
धोता शुचि चरण युगल। स्तव कर बहु अर्थ भरे।
मुकुट शुभ्र हिमतुषार। प्राण प्रणव ओंकार।
ध्वनित दिशाएँ उदार। शतमुख शतरव मुखरे।।''

(गीतिका पृ. 68)

'बलि हों तेरे चरणों पर माँ' की कामना करनेवाले उन अमर दिव्य विभूतियों को कोटि-कोटि नमन!

लेखक वरिष्ठ साहित्यकार हैं।

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 32

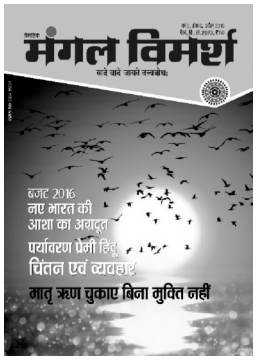

'मंगल विमर्श' के अप्रैल, 2016 - अंक 6 में 'मातृऋण चुकाए बिना मुक्ति नहीं' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ था। इस लेख की विषयवस्तु पर विद्वानों के विचार, अक्तूबर, 2016- अंक आठ के 'मनोगत' में प्रस्तुत किए थे। आदरणीय डॉ. श्री हिम्मत सिंह जी सिन्हा, कुरुक्षेत्र का कथन था कि 'मातृऋण का उल्लेख शास्त्रों में नहीं है, अतः इस अवधारणा में विसंगति है।' प्रस्तुत लेख इसी टिप्पणी पर संदर्भित है।

– संपादक

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 33

दामोदर शांडिल्य

मातृऋण शोधनः पुनर्विचार

त्रिणिऋण्या अपाकृत्य मनो मोक्षे नियोजियेत् (तीन ऋणों का शोधन करके अपने को मोक्ष प्राप्ति में लगावें) इन तीन ऋणों में-पितृ ऋण, ऋषि ऋण तथा देव ऋण की अवधारणा, सृष्टिक्रम की निरंतरता बनाए रखकर पितृसत्ता, ज्ञान सत्ता तथा देव सत्ता के प्रति कृतज्ञता के भाव का ज्ञापन, हिंदू जीवन पद्धति तथा जीवन दर्शन में हमारे मनीषियों ने किया। यहाँ देव सत्ता का अर्थ प्रकृति तथा इंद्रियों की शक्तियों से है, जिन्हें हमारे यहाँ देव कहा गया है। इस प्रकार हिंदू जीवन पद्धति कृतज्ञता-ज्ञापन, समन्वय, सहयोग, सहजीवन, संरक्षण, संवर्धन, संयमित उपभोग का जीवन दर्शन है। पितृ ऋण शोधन भी मानव जीवन परंपरा की निरंतरता को बनाए रखने का अनुष्ठान है।

यह सही है कि पितृऋण में पिता तथा माता दोनों का समावेश है। पितृपक्ष की तरह मातृपक्ष का कहीं भी उल्लेख नहीं है और श्राद्ध तर्पण आदि में पिता, पितामह, प्रपितामह तथा माता, मातामही, प्रमातामही को शामिल किया गया है। साथ ही यह भी सही है कि 'मातृदेवो भव' 'मातृ पितृ चरण कमलेभ्यो नमः' तथा स्त्री का नाम पहले व्यक्त करना जैसे सीताराम, राधाकृष्ण, लक्ष्मीनारायण आदि, हमारे यहाँ प्रचलित है। पर इन सबके होते हुए भी व्यावहारिक तौर मातृसत्ता के अप्रकट रूप पर विचार करना आवश्यक है।

'पितृ' शब्द पुलिंग है। ब्रह्म शब्द भी अकारांत पुलिंग है। पितृ शब्द में मातृ-पितृ सभी पूर्वजों का समावेश है। यह सही है। वेद में तो हजारों पितरों के स्मरण करने का उल्लेख है। वे चाहे पुनः जन्में हों या किसी भी लोक में स्थित हों। उन्हें नमस्कार कर आह्वान किया गया है। पितृसूक्त में वर्णन है-

''आग्ने याहि सहस्त्रं देववन्दै परै पूर्वेः पितृभिघर्मसद्भि''-पितृसूक्त -मंत्र 10 (हे अग्निदेव? देवों की वंदना करने वाले, धर्म नामक हवि के पास बैठने वाले,

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 34

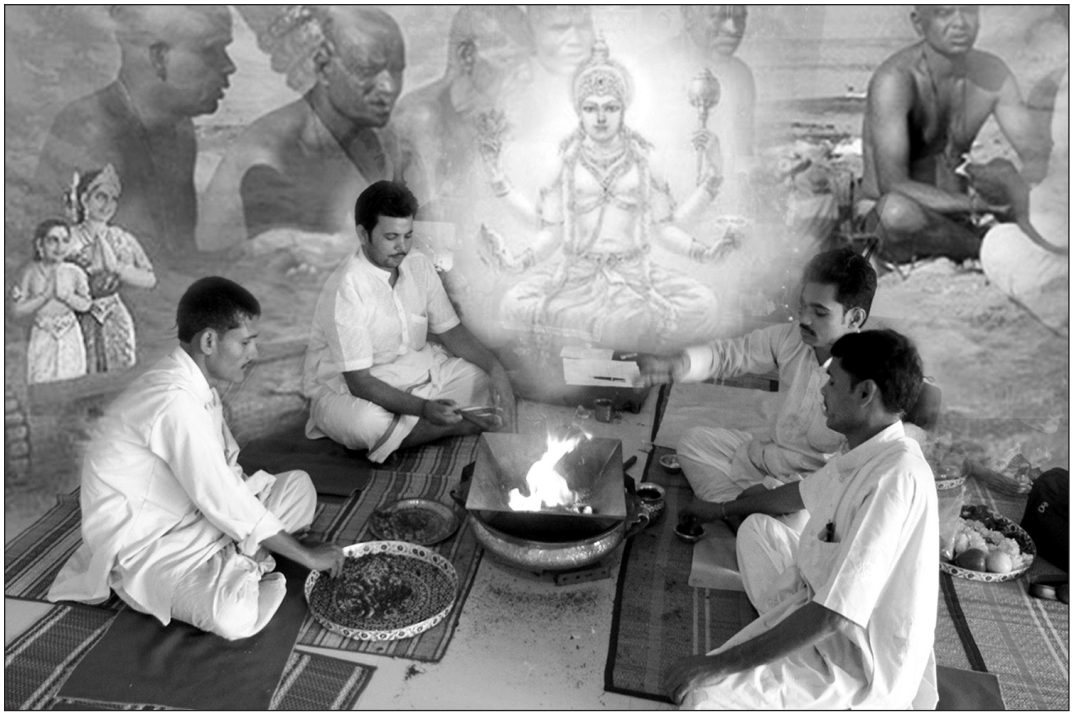

जो हमारे पूर्वज पितर हैं; उन्हें सहस्रों की संख्या में लेकर पधारें)। पितरों के तीन स्थान हैं–यमलोक, मर्त्यलोक तथा विष्णुलोक। पितृ शब्द पुलिंग है। यदि स्त्री-पुरुष सभी पितरों का इसमें समावेश होता तो इसे नपुंसकलिंग शब्द में गणना होनी चाहिए थी, पर ऐसा नहीं हे। यह भी विचारणीय है।

मातृभाव विविध रूपा

हमें जन्म देने वाली मानवी, माता है, सृष्टि का पालन, रक्षण, संवर्धन करने वाली भूमि माता है; सृष्टि जगती के साथ पितृ, ऋषि, देव सत्ताओं को जन्म देने वाली महामाया भी माता है। मानव जीवन का रक्षण-पोषण, संवर्धन करने वाली सब वस्तुएँ गौ, नदी आदि सब मातृभाव में हैं। वर्ण भी मातृका है जो वाक्योग के मूल में है तथा सृष्टि के सृजन, विस्तार तथा लय का कारण है। माता शब्द विविध रूपा है, पर संक्षेप में मानव जीवन से संबंधित सर्वाधिक सरोकारी रूप मानवी जननी भू-माता तथा प्रकृति के रूप में ब्रह्म की शक्ति महामाया है।

स्त्री के तीन भाव

मानव सभ्यता में स्त्री तीन रूपों में जीती है, स्त्री बालपन में कन्या, युवावस्था में पत्नी और संतानोत्पत्ति के बाद माता। हिंदू संस्कृति में स्त्री सदैव रक्षणीया मानी गई है। पर बाल्यावस्था में कन्या, युवावस्था में पत्नी रूप सुख, आनंदप्रदा भोग्या तथा जननी रूप माता है। स्त्री प्रकृतिरूपा, सृजनस्वभावा, त्याग, समर्पण, धैर्य, क्षमा, सहिष्णुता समन्वित निषेधात्मक शक्तिरूपा है। वह ग्रहीता है, मोहनीयता तथा रागात्मकता का उत्स है। सृष्टि के नैरंतर्य का मूल है। पुरुष केवल बीज प्रदाता, बल, अधिकार, अहं का विस्तार है। दोनों पूरक हैं। दोनों मिलकर एक हैं, तभी सार्थकता है। बिना पिता के माता शब्द की कल्पना नहीं, तो बिना माता के पितृत्व का भी अस्तित्व नहीं है। बिना भूमि के बीज व्यर्थ है

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 35

तथा बिना बीज के भूमि भी निरर्थक है। अतः बीज भी चाहिए और भूमि भी। बीज-ग्रहण सृजन, प्रसव, पालन, शिक्षण सब स्त्री रूप माता के कारण है। स्त्री का कन्यारूप रक्षणीय है, पत्नी रूप मोहनीय पर मातृरूप ही श्रद्धेय तथा पूजनीय है।

पितृसत्तात्मक सभ्यताएँ

सभी मानव सभ्यताएँ पितृत्व प्रधान रही है। केवल हिंदू संस्कृति में 'ब्रह्म' लिंगातीत है और ब्रह्मरूप ब्रह्मा, जो जिनकर्ता है नपुंसक लिंग है। अब्राहमी, संस्कृतियों यहूदी, ईसाई, इस्लाम आदि में परमेश्वर पुरुष रूप है। इनमें स्त्री की उत्पत्ति आदम की पसुंली से होनी, मानी गई है और स्त्री को भी सृष्टि के अन्य उपादानों की तरह आदमी के उपभोग और परमेश्वर की प्रजा की वृद्धि हेतु ही मानी गई है। मातृरूप में ईश्वर की अवधारणा केवल हिंदू संस्कृति में है जो सृजनकर्ता प्रकृति को ब्रह्म की अपरा शक्ति मान कर उसे जगज्जननी रूप ब्रह्म ही माना है।

हमें जन्म देने वाली मानवी, माता है, सृष्टि का पालन, रक्षण, संवर्धन करने वाली भूमि माता है; सृष्टि जगती के साथ पितृ, ऋषि, देव सत्ताओं को जन्म देने वाली महामाया भी माता है। मानव जीवन से संबंधित सर्वाधिक सरोकारी रूप मानवी जननी, भू-माता तथा प्रकृति के रूप में ब्रह्म की शक्ति महामाया है।

हिंदू संस्कृति में चंद्र पंचाग (कलेंडर) को मान्यता दी है। चंद्रमा का मानव जीवन से अनन्य संबंध है। सूर्य को आत्मा का उत्स तथा निर्वाण संस्थान माना है। चंद्र से उत्सर्जित सोम जीवन के मूल में है। शास्त्रों का कथन है कि 28 नक्षत्रों में गति करते चंद्रमा से पुरुष में सोम किरणों से 28 बिंदुओं का आदान होता है। जो क्रमशः 7वीं पीढ़ी में निःशेष होते हैं। इसका व्यवस्थित क्रम है। (वेद विज्ञान– पं. मघू सूदन ओझा)। इनके संतान परंपरा में 7वीं पीढ़ी में समाप्त होने पर ही पितरों को मोक्ष मिलता है। पुरुष के शरीर में चंद्रमा से प्राप्त 28 बिंदु और स्त्री शरीर में 28 दिन का ऋतु चक्र इन दोनों में साम्यता है। डिंब तथा रज का निर्माण तथा उत्सर्जन क्रम चलता रहता है। आनुवांशिकी विज्ञान में संतान में माता तथा पिता दोनों के गुणसूत्र मिलते हैं। आकृति, स्वभाव, प्रकृति व्यवहार, रुचि प्रवृत्ति, रोग, शरीर यष्टि आदि में दोनों का प्रभाव देखने में आता है। पर फिर भी पितृसत्तात्मक सभ्यताओं में पितृत्व ही प्रधान माना गया है। हिंदू-विवाह में पिता की 7वीं पीढ़ी तक तथा माता की 5वीं पीढ़ी तक के गोत्रों में शादी न होने की वर्जना के पीछे यही विज्ञान है। पर हमारे शास्त्रों में स्त्री को 'अष्टपुत्रवती/दशपुत्रवती भव' का आशीर्वाद दिया जाता है। हिंदू चिंतन कृतज्ञता का चिंतन है और स्त्री तत्त्व को भी परमेश्वर का ही रूप मानकर उसकी उस रूप में आराधना करता है।

स्त्री का कन्या भाव - कन्यादान एक गूढ़ पहेली

हिंदू समाज में विवाह धार्मिक कर्म है। परिजनों की साक्ष्य तथा अग्नि, ब्राह्मण तथा विष्णु के सान्निध्य में पुरुष-स्त्री का विवाह होता है। सेमेटिक संस्कृतियों में विवाह एक समझौता है, साथ रहने, कामवासना पूरी करने तथा संतान उत्पत्ति करने का। तलाक होने पर स्त्री केवल 'मेहर' पाने की अधिकारी होती है जो निकाह के समय तय होती है।

हिंदू समाज में विवाह, धर्म से जुड़ा है। इसमें कन्या को दान की वस्तु माना है। एक प्रकार से कन्या धन है और वर को उसके वंश वृद्धि के हेतु पिता द्वारा दान की जाती है। कन्यादान में मुख्य संकल्पकर्ता कन्या का पिता होता है, माता की भूमिका कुछ गौण मात्रा में है।

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 36

कन्यादान के संकल्प के मुख्य अंश है-''.....अस्या कन्याया अनेन वरेण धर्मप्रजया उभयोः वंशवृद्धयर्थ तथा च मम समस्त पितृणां निरातिशयानन्द ब्रह्मलोकाः वाप्यादि। अनेन वरेण अस्यां कन्यायाम् उत्पादयिष्यमानं संतत्या दशपूर्वान दश परान माम् च एकविशंति पुरुषानुद्धर्तुम् ब्रह्मविवाह विधिना श्री महालक्ष्मी नारायण प्रीतये गोत्रोच्चारपूर्वकं कन्यादानं अहं करिष्ये''। यह कन्यादान की इच्छा का प्रकटीकरण है। मुख्य संकल्प बाद में और होता है। उसका मुख्य अंश है- ''स्वहस्तोपार्जित गृहवित्तानुसारेण'' ''एकोत्तरशत कोटि कुलोद्धार श्रेयसे''.....अमुक वराय मधुपर्केण पूजिताया तत्संतान परम्परा वृद्धये आचन्द्रार्क यावत् इमां कन्यां यथाशक्तया अलंकृता गृहमंडप उपविष्ट स्वजन साक्षिभिः विष्णौ, वन्हि, ब्राह्मण सान्निद्यौ वेदशास्त्रपुराणोक्त शतगुणीकृत ज्योतिष्टोम अतिराज फल प्राप्तिकामः भायफत्वेन तुभ्यम् अहं संप्रददे ' स्वस्ति।'' इस संकल्प का जल छोड़ने के उपरांत कन्या के माता–पिता वर से प्रार्थना करते हैं–''दास्यामि ब्रह्मणे तुभ्यं ब्रह्मलोक जिगीषया''-''इमां कन्यां प्रदास्यामि पितृणां तारणाय च'' - तुभ्यं वरम् अया दत्तं पुत्र पौत्र विवर्धिनी''। यह संकल्प मंत्र पिता द्वारा ही किया जाता है। कन्या की माता की भूमिका छोटी-सी है। वह संकल्प का जल छोड़ते हुए कहती है–''मयापि दत्ता''। अर्थात् मैने भी दी।

कन्या को धन मान कर, कन्यादान को महादान कहा गया है, ताकि सृष्टि की निरंतरता बनी रहे। ''जिन कन्याधन को दान कियो, उन और को दान कियो न कियो''–बाबा तुलसीदास। कन्यादान के संकल्प मंत्रों

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 37

में मूल तत्त्व है– पूर्वजों की मोक्ष-शतगुणीकृत ज्योतिष्टहोम अतिराज आदि यज्ञों के करने का फल''--ब्रह्मलोक की प्राप्ति की आकांक्षा, पितरों का तरना, वर के वंश की वृद्धि। इसमें कन्या को केवल पुत्र पौत्र विवर्धिनी माना गया है। पिता की ही भूमिका प्रधान है। माता केवल आनुषांगिक रूप से सहमति देती है– मयापिदत्ता, कहकर। इस प्रकार पितरों की व्याख्या पितृत्म प्रधान है। मातृत्मक गौण है।

कन्या को धन मानने की विडंबना

हिंदू परिवार अपने बंधनों, भावनाओं, मान्यताओं, संस्कारों, तथा परंपरागत भावों के कारण संसार के समक्ष अपनी कोई सानी नहीं रखता पर यह भावनात्मक बंधन एक गूढ़ पहेली है। 'नाल का संबंध' एक ऐसा बंधन है कि कन्या को पराया धन मान कर भी माता–पिता का गृह कन्या के लिए सदैव खुला रहता है। क्योंकि माता कहती है 'नौ महीने गर्भ में पाला है तो आगे भी रोटी में उसकी सीर है' पर साथ ही समाज के एक वर्ग की संकुचित सोच है कि लड़की पर होने वाला प्रत्येक खर्च दूसरे की जेब में जा रहा है। जब लड़के पर किया खर्च ब्याज सहित भविष्य में मिलेगा। लड़का पितरों के मोक्ष का कारण बनेगा। बुढ़ापे का सहारा बनेगा आदि आदि। यह ही कारण है कि कन्या को बोझिल दायित्व समझा जाता है। जबकि ऐसा नहीं है। सुसंस्कृत हिंदू परिवार कन्या की शिक्षा-दीक्षा पालन-पोषण आत्मीय और आदर भाव से करता है। सुंस्कृत शिक्षित कन्या दो कुलों का उद्धार करती है। कन्याओं के प्रति भेदभाव के मूल में कहीं न कहीं कोई भूल तो है ही। केवल कन्या को धन मानना इसका कारण नहीं है। कन्या के प्रति मातृभाव हिंदू समाज में है। 'कन्या से पैर नहीं छुआना'; बंगाल में अपनी पुत्र-वधू को भी श्वसुर द्वारा 'बहू माँ' कह कर संबोधित करना; ''स्त्री पर हाथ नहीं उठाना''; ''घूर कर नहीं देखना'' आदि बातें समाज में हैं; पर यह भी सत्य है समाज 'परायाधन' मान कर कन्या की उपेक्षा तो करता ही है।

हिंदू परिवार अपने बंधनों, भावनाओं, मान्यताओं, संस्कारों, व परंपरागत भावों के कारण संसार के समक्ष अपनी कोई सानी नहीं रखता पर यह भावनात्मक बंधन एक गूढ़ पहेली है। 'नाल का संबंध' एक ऐसा बंधन है कि कन्या को पराया धन मान कर भी माता-पिता का गृह कन्या के लिए सदैव खुला रहता है।

स्त्री का पत्नी रूप

समाज गृहस्थ जीवन में पत्नी की भूमिका से सुपरिचित है। मोहनीयता तथा अनुरागात्मक बंध इस रूप का मूल तत्त्व है। आनंद इसका उत्स है। प्रजा का जन्म भी आनंद से ही होता है। ऐसा उपनिषद् कहते हैं। इसलिए स्त्री को आनंद का कारण मानकर इसे प्राप्त करने के लिए मानव इतिहास में युद्ध हुए हैं। स्त्री की इस मोहनीय शक्ति का ही परिणाम है कि इसके एक कटाक्ष, भंगिमा से बड़े-बड़े साम्राज्य धूलधूसरित हो गए। बड़े-बड़े विश्वामित्रों की तपस्या भंग हो गई। रामायण, महाभारत में भी तो स्त्री की भूमिका प्रधान है।

स्त्री का मातृरूप

नारी में ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना है, और नारी का भी मातृरूप ही उसकी सार्थकता है। माता के रूप में वह श्रद्धेय एवं पूज्य है। संतान का गर्भ में सृजन, जनन, पालन, शिक्षण में माता की भूमिका अवर्णनीय है। इस रूप में स्त्री वात्सल्य, त्याग, सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति होती है। माता की गोद में बालक की पूर्ण सुरक्षा है।

पितृ ऋण शोधन

यह सही है कि पितृ पक्ष में माता-पिता की तीन

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 38

पीढ़ियों का आह्वान कर श्राद्ध तर्पण किया जाता है। इसमें 'मातृपक्ष' माता के पक्ष का कोई उदाहरण शास्त्रों में नहीं है। पर हमारे दर्शन के अनुसार प्रत्येक जीव अपने कर्मों का भोक्ता स्वयं है। आत्मा का लिंग नहीं होता है। अपने-अपने कर्मभोग के लिए मरने के बाद सारे सांसारिक संबंध समाप्त हो जाते हैं।

'पितृ ऋण शोधन से सृष्टि की निरंतरता' की बात अधूरी है। जीवन भर तो माता-पिता को कष्ट दे और श्राद्ध तर्पण धूमधाम से करे, पर यह ऋण शोधन नहीं है। जीवन भर सेवा करना और उनकी मृत्यु के बाद उनका श्राद्ध तर्पण करना तथा अपने वंश की निरंतरता बनाए रखने हेतु संतान उत्पत्ति करना ही ऋण शोधन है। अतः पिता की तुलना में माता का ऋण ज्यादा है। कई विद्वान कहते हैं, बिना पिता के हिंदू संस्कृति में माता की कल्पना नहीं की जा सकती''। यह सही है पर यह भी सत्य है कि बिना माता के पितृव्य का अस्तित्व ही नहीं होगा। अतः पितृऋण शोधन में मातृऋण शोधन का भाव प्राथमिकता से होना चाहिए। पर व्यवहार में यह नहीं है। क्यों नहीं है? यह शोध का विषय है।

मातृ रूप सृष्टि में व्याप्त

'माता' शब्द सुनते ही जो चित्र मानस पटल पर उभरता है वह है जन्मदात्री, पालनकर्त्री, पोषणकर्त्री, वात्सल्य, त्याग व प्रेम की प्रतिमा। यह भाव तीन रूपों में सृष्टि में व्याप्त है। इसे यूँ भी कह सकते हैं कि समूची सृष्टि मातृभाव की ही अभिव्यक्ति है।

हमारी जन्मदात्री माता, प्रथम माता है; यह भूमि जो

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 39

अन्न, वस्त्र, जल, वनस्पति, फूल, फल औषधियाँ प्रदान कर हमारा पोषण करती है–यह भूमाता दूसरी माता है। इस सृष्टि का सृजन जिस शक्ति से हुआ है वह ब्रह्म की शक्ति महामाया जगदंबा तीसरी माता है। जगदंबा ही सृष्टि की तीनों सत्ताओं पितृसत्ता, ऋषिसत्ता और देवसत्ता की जन्मदात्री है। यह प्रकृति भी उस महामाया का ही रूप है।

मातृऋण शोधन समष्टिगत अर्थ में

वृहत् परिपेक्ष्य में मातृऋण शोधन ही मानव का मोक्ष प्रदाता है। यह विचार श्री म.म. गोपीनाथ कविराज, श्री गुरुजी गोलवलकर, भगवान रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद आदि मनीषियों का है।

भगवान् रामकृष्ण की मातृरूप ब्रह्मोपासना

भगवान् रामकृष्ण परमहंस जगज्जननी महामाया, जगदंबा के काली रूप के उपासक थे। वे कहा करते थे--''जैसे अग्नि से अग्नि का तेज अलग नहीं किया जा सकता है, वैसे ही ब्रह्म से ब्रह्म की शक्ति महामाया को अलग नहीं किया जा सकता। शिव से शक्ति, राम से सीता, नारायण से लक्ष्मी, कृष्ण से राधा अलग नहीं है। भगवान रामकृष्ण के अद्वैतवेदांत के शिक्षा गुरु तथा संन्यास गुरु श्री तोतापुरी जी माया को ब्रह्म की शक्ति ही मानते थे। महान योगी, निर्विकल्प समाधि संपन्न, आत्मसाक्षात्कारी, वेदांतदर्शन के प्रकांड विद्वान श्री तोतापुरी जी गोरक्षनाथ परंपरा के नागा साधु थे। भगवान् रामकृष्ण के संपर्क से उन्हें मातृरूप महामाया की ब्रह्म से अद्वैतता की अनुभूति हुई। वे दक्षिणेश्वर निवास के दौरान संग्रहणी (पेचिश) रोग से बुरी तरह ग्रस्त हो गए। रोग असाध्य समझ कर उन्होंने माया (प्रकृति) निर्मित शरीर को अपने से अलग मानकर शरीर त्याग करने का निश्चय किया और इस हेतु एक रात उन्होंने दक्षिणेश्वर के पास बहने वाली गंगा नदी में डूब कर शरीर छोड़ने हेतु प्रवेश किया। नदी में उतर कर जब डूबने योग्य स्थान खोजने हेतु आगे बढ़े तो नदी ने रास्ता दे दिया।

दूसरे किनारे तक भी उन्हें डूबने योग्य स्थान नहीं मिला। श्री तोतापुरी जी को इस पर बहुत आश्चर्य हुआ, लेकिन तत्काल उनकी बुद्धि पर से अज्ञान, अविद्या का पर्दा हट गया और उनके अंतरतम में एक दिव्य ज्योति चमक गई। उन्होंने देखा कि जगज्जननी माँ सब ओर है। माँ अकल्पनीय शक्ति है। भूमि, जल, शरीर, मन, बीमारी, स्वास्थ्य, ज्ञान, अज्ञान, जीवन, मृत्यु, श्रवण, विचार, कल्पना, सब माता जगज्जननी महामाया ही है। जब तक कोई शरीर में है तो उसके प्रभाव से वह मुक्त नहीं है। यहाँ तक कि व्यक्ति उसकी (माता की) इच्छा के बिना मर भी नहीं सकता। यह महामाया शरीर, मन व बुद्धि से परे है। श्री तोतापुरी को साक्षात्कार हुआ कि जिसे मैं ब्रह्म मानकर अपने हृदय का प्रेम भेंट कर रहा था, वह महामाया माँ ही है। शिव और शक्ति एक है जो हर-गौरी के रूप में शाश्वत है। ब्रह्म और ब्रह्मशक्ति एक है। (श्री रामकृष्णा - द ग्रेट मास्टर, पेज 560)

सुबह श्री रामकृष्ण अपने गुरु का स्वास्थ्य समाचार जानने हेतु उनसे मिले तो श्री तोतापुरी जी ने उनको

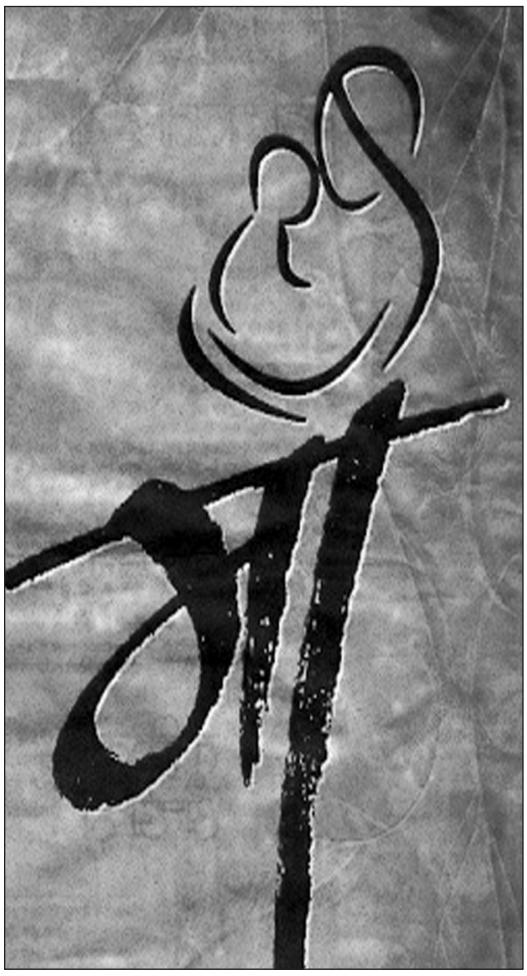

अपनी रातवाली घटना सुनाई और कहा–मैं अब रोग मुक्त हूँ। मैने रात्रि को जगज्जननी के दर्शन किए हैं।

श्री रामकृष्ण कहा करते थे -''माता की कृपा के बिना कुछ संभव नहीं है। वह हटने के बाद ही राह मिलती है।'' वे श्रीराम, भगवती सीता तथा श्री लक्ष्मण के वन गमन की घटना सुनाया करते थे। श्री लक्ष्मण जी सदैव अपने आराध्य श्री राम को देखते रहना चाहते थे। बीच में शक्ति रूप सीता जी चलती थी। घने वन में जहाँ केवल एक व्यक्ति के चलने की पगडंडी थी तो राम जी का स्वरूप लक्ष्मण जी के दृष्टि पथ से ओझल हो जाता था तो लक्ष्मण जी दायें बायें देखने का प्रयत्न करते थे। भगवती सीता ने लक्ष्मण जी के कष्ट और उनके भाव को समझा और वे थोड़ा एक तरफ हट गई और लक्ष्मण जी से कहा– 'वहाँ देखो।' इस पर लक्ष्मण जी को अपने आराध्य के दर्शन हुए। राम ब्रह्म हैं सीता उनकी शक्ति महामाया और लक्ष्मण जीव है। जीव ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहे तो बिना माहमाया की कृपा के ब्रह्मदर्शन नहीं हो सकता। अतः ब्रह्म तथा माया में भेद करेंगे तो कुछ नहीं मिलेगा। ब्रह्म और ब्रह्मशक्ति एक है अर्थात् माँ रूप जगज्जननी ब्रह्म रूप ही है। दुर्गा सप्तशती में दुर्गा को ब्रह्मरूपिणी ही कहा गया है। आदि शंकराचार्य जी ने ''ब्रह्म सत्यं जगंमिथ्या'' महावाक्य में क्षण-क्षण बदलने वाले जगत् को मिथ्या कहा है प्रकृति रूप महामाया को नहीं कहा है। गीता में भी पुरुष तथा प्रकृति दोनों को अनादि कहा गया है।

वैसे भी माया द्वारा निर्मित ज्ञानेंद्रियाँ, मन, बुद्धि की शक्तियाँ बहिर्मुखी होती हैं तो बंधन का, अज्ञान का कारण होती है और ये ही शक्तियाँ अन्तर्मुख होती है तो ये ज्ञान,शक्ति,मोक्ष का माध्यम बन जाती है।

मातृऋण शोधन की असंभवता

ऋण शोधन का अर्थ है प्राप्त धन का वापिस ज्यों का त्यों या अधिक बढ़ा कर चुकाना। ऋषि, पितृ, दैव ऋण चुकाए जा सकते हैं, पर मातृऋण नहीं चुकाया जा सकता क्योंकि पुरुष में वह योग्यता और सामर्थ्य नहीं है– म.म. पं. गोपीनाथ कविराज। ज्ञान, शिक्षा, संस्कारों का रक्षण, वर्धन, वितरण कर ऋषि ऋण चुकाया जा सकता है। विवाह कर संतानोत्पत्ति करके मानव जीवन की निरंतरता बनाए रख कर तथा पितरों का श्राद्ध-तर्पण कर पितृ ऋण शोधन किया जा सकता है। यज्ञ कर्म कर पर्यावरण तथा प्राकृतिक शक्तियों का पोषण कर दैव ऋण चुकाया जा सकता है। पर मातृऋण नहीं चुकाया जा सकता। परमयोगी भी नहीं चुका सकते।

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 41

ज्ञान, शिक्षा, संस्कारों का रक्षण, वर्धन, वितरण कर ऋषि ऋण चुकाया जा सकता है। विवाह कर संतानोत्पत्ति करके मानव जीवन की निरंतरता बनाए रख कर तथा पितरों का श्राद्ध-तर्पण कर पितृ ऋण शोधन किया जा सकता है। यज्ञ कर्म कर पर्यावरण तथा प्राकृतिक शक्तियों का पोषण कर दैव ऋण चुकाया जा सकता है। मातृऋण से मुक्ति केवल सेवा द्वारा ही हो सकती है। मातृभाव के तीनों रूपों मानवी जननी, भूमाता मातृभूमि तथा जग-जननी महामाया प्रकृति, इन तीनों के प्रति आदर, सम्मान, श्रद्धा, भक्ति से ऋण शोधन हो सकता है। समाज में स्त्री मात्र के प्रति आदर, सम्मान, पूज्यभाव रखना, भूमि का, प्रकृति का रक्षण संवर्धन पोषण करना ही मातृऋण शोधन के उपाय हैं।

सेवा मात्र से मातृऋण का शोधन

म.म. योगीराज श्री गोपीनाथ कविराज, श्री मा.स. गोलवलकर, योगी अरविंद घोष, भगवान रामकृष्ण का उपदेश है कि मातृऋण से मुक्ति केवल सेवा द्वारा ही हो सकती है। मातृभाव के तीनों रूपों मानवी जननी, भूमाता मातृभूमि तथा जग-जननी महामाया प्रकृति, इन तीनों के प्रति आदर, सम्मान, श्रद्धा, भक्ति से ऋण शोधन हो सकता है। समाज में स्त्रीमात्र के प्रति आदर, सम्मान, पूज्यभाव रखना, भूमि का, प्रकृति का रक्षण संवर्धन पोषण करना जगज्जनी जगदंबा महामाया की कृपा प्राप्त करने के लिए नित्य कृतज्ञता ज्ञापन, ध्यान, प्रार्थना, अर्चना करना। ये ही मातृऋण शोधन के उपाय हैं।

बौद्ध परंपरा में भी भगवान बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्ति हेतु प्रज्ञापारमिता नए मार्ग का प्रकाश गृद्धकूट पर्वत पर शिष्यों को किया था। डॉ. गोपीनाथ कविराज ने लिखा है-''प्रज्ञा परामिता वास्तव में जगन्माता महाशक्ति रूपा महामाया है। महायान धर्म के विकास में शाक्त आगम का पूरा प्रभाव देखने में आता है। यह महाशक्ति रूपा 'प्रज्ञा' बौधिसत्व गणों की जननी तो हैं ही बुद्धों की भी जननी हैं। शिव और शक्ति में जैसे चंद्र और चंद्रिका जैसा अभेद संबंध है वैसा ही बुद्ध और प्रज्ञापरामिता के बारे में समझना चाहिए। विश्व के दुःख के निर्मोचन-कर्म में बौधिसत्त्व गण इसी जननी की प्रेरणा और सामर्थ्य से ही अग्रसर हो सकते हैं। महाशक्ति के अनुग्रह के बिना लोकार्थ-संपादन-कर्म असंभव है। पारमितानय में करुणा आदि चर्या प्रधान हैं। चर्या का अर्थ बौद्ध दर्शन में सेवा से है। जैन धर्म में भी पद्मावती साधना के पीछे जग जननी महामाया का ही भाव है।

अतः मातृऋण शोधन आवश्यक है। पितृ ऋण शोधन में मातृऋण शोधन समाविष्ट है, पर आज के युग की आवश्यकता के अनुसार इसकी व्याख्या, परिभाषा, स्पष्टीकरण आवश्यक है। स्त्री मात्र के प्रति ''मातृवत् परदारेषु'' का भाव समाज में आए बिना, नारी के केवल मोहनीय, भोग्या भाव की आज के मानव की मानसिकता नहीं बदल सकती। मन का भाव नहीं बदला तो स्त्री को देखने की दृष्टि कैसे बदल सकती है? केवल 'सोच बदलो', 'दृष्टिबदलो' के वाक्य टी.वी. चैनलों पर बोलने तथा कठोरातिकठोर कानून बनाने से समाज में बढ़ती बलात्कारों की पैशाचिक घटनाएँ नहीं रुक सकती। स्त्री के प्रति आदर सम्मान के भाव के जागरण से ही समाज में स्त्रियाँ सुरक्षित रह सकेंगी।

लेखक भारतीय दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान हैं।

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 42

दुर्भाग्य से भारत में और विशेष रूप से पश्चिम बंगाल में जनसंख्या वृद्धि का विषय वोट बैंक की राजनीति के साथ जुड़ गया है और इसी का परिणाम है कि यह जनसांख्यिकीय हमला किसी भी सार्वजनिक प्रतिरोध के बिना बेरोकटोक जारी है। इस तरह जनसंख्या का यह मौन हमला नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। देश के समाजशास्त्री इस अस्वाभाविक वृद्धि यानी मुसलमानों की उच्च जन्म दर का कारण सामाजिक भेदभाव और गरीबी बताते हैं। जबकि मुसलमानों की उच्च जन्म दर के लिए गरीबी को जिम्मेदार ठहराने का तर्क अर्धसत्य है।

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 43

राजेंद्र चड्डा

बांग्लादेशी घुसपैठ ने बदला पश्चिम बंगाल का जनसंख्या चरित्र

आज देश की मुख्य राजनीतिक धारा में अपवाद स्वरूप ही एकाध को छोड़कर शायद कोई राजनीतिकदल भारत के विभिन्न राज्यों में बड़े पैमाने पर बांग्लादेश से लगातार हो रही मुसलमानों की अ वैध आवाजाही और घुसपैठ से इनकार करेगा। जबकि दूसरी ओर, धार्मिक समुदायों की जनसंख्या के जनगणना-2011 के आँकड़े दूसरी ही कहानी बताते हैं। अगर देश के पूर्वोत्तर भाग, जहाँ पर बांग्लादेशी आबादी की व्यापक स्तर पर हुई अवैध घुसपैठ के कारण भू-राजनीतिक-सांस्कृतिक परिदृश्य ही परिवर्तित हो चुका है, को देखें तो असम में मुसलमानों की जनसंख्या में वृद्धि हैरानी के साथ चिंता में डालने वाली है। असम में मुसलमान 2001 में 30.9 प्रतिशत से बढ़ कर 2011 में 34.22 प्रतिशत हो गए हैं, यानी तीन प्रतिशत से भी अधिक की वृद्धि। ऐसे ही, पश्चिम बंगाल में मुसलमानों की हिस्सेदारी 2001 में 25.2 प्रतिशत की तुलना में 2011 में बढ़कर 26.94 प्रतिशत हो गई है।

मुसलमान बहुल जनसंख्या वाले बड़े राज्यों यथा असम में मुसलमानों की वृद्धि दर 29.59 प्रतिशत और पश्चिम बंगाल 21.81 प्रतिशत रही हैं। अब मुसलमानों की इस वृद्धि को स्वाभाविक या प्राकृतिक मानना जनसंख्या के आँकड़ों की बेमानी व्याख्या है। असली सवाल यह है कि आखिर इतनी अधिक जनसंख्या कहाँ से आई? आखिर आसमान से तो उतरी नहीं। आज बेशक असम में धार्मिक जनगणना रिपोर्ट के परिणाम एक झटका हों, लेकिन पश्चिम बंगाल और बिहार में धार्मिक जनसांख्यिकी परिवर्तन भी उतनी ही चिंताजनक है क्योंकि यहाँ पर भी बांग्लादेशी मुसलमानों की घुसपैठ अच्छी खासी रही है। इन दोनों राज्यों के राजनीतिक दल सत्ता पर काबिज होने के लिए बांग्लादेशी मुसलमानों के वोटबैंक पर निर्भर हैं। यह अनायास नहीं है कि राजद ने बांग्लादेश के

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 44

पश्चिम बंगाल में देश विभाजन के बाद जहाँ एक ओर प्रत्येक जनगणना के साथ हिंदुओं का संख्या बल क्षीण हुआ है वहीं दूसरी ओर तुलनात्मक रूप से मुसलमानों का राज्य की धार्मिक जनसंख्या में अनुपात तेजी से बढ़ा है। मुस्लिम जनसंख्या की वृद्धि और आकार में बढ़ोत्तरी बिना इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए हुई कि राज्य में ऐसी बढ़ी हुई आबादी को वहन करने की क्षमता नहीं है।

करीब पूर्वी बिहार में ज्यादातर सीटें जीती थीं। जनगणना के आँकड़ों ने पश्चिम बंगाल में मुसलमानों की जनसंख्या की अप्रत्याशित वृद्धि का विषय बहस के केंद्र में ला दिया है। बांग्लादेश के मुसलमानों का अवैध आगमन के मुद्दे पर भाजपा को छोड़कर सभी राजनीतिक दलों में दुरभिसंधि है। इसी का परिणाम है कि सबने इस पर मौन साधा हुआ है। पश्चिम बंगाल के मुर्शिदाबाद, मालदा और दक्षिण में 24 परगना के सीमावर्ती जिलों में बांग्लादेशी मुसलमानों की घुसपैठ के कारण व्यापकरूप से जनसांख्यिकीय परिवर्तन हुआ है। इन स्थानों पर स्थिति खतरनाक है। पश्चिम बंगाल में चुनावों में कई पार्टियों में मुसलिम वोट के लिए पागलपन की हद तक की होड़ होती है। ऐसा कई स्थानों पर मुसलमानों के चुनाव परिणामों को प्रभावित करने की क्षमता के कारण होता है, खासकर मुसलिम बहुल क्षेत्रों में। देश में इस बहुलता का परिणाम मुसलमानों के भारी संख्या में मतदान के लिए निकलने और ध्रुवीकरण की राजनीति की एक प्रवृत्ति स्थापित करने के रूप में हुआ है।

देश के विभाजन के बाद 1951 की जनगणना में पश्चिम बंगाल में मुसलमानों की कुल जनसंख्या 49,25,496 थी, जो कि 2011 की जनगणना में बढ़कर 2,46,54,825 यानी लगभग पाँच गुना हो गई। भारत के जनगणना आयुक्त की रिपोर्ट के अनुसार, पश्चिम बंगाल में 2011 में हिंदुओं की 10.8 प्रतिशत दशकीय वृद्धि की तुलना में मुस्लिम जनसंख्या की दशक वृद्धि दर 21.8 प्रतिशत है। इस तरह, हिंदुओं की तुलना में मुसलमानों की दशकीय वृद्धि दर दोगुने से भी अधिक है। 1951 के बाद से हर जनगणना में पश्चिम बंगाल के औसत की तुलना में हिंदुओं की दशकीय वृद्धि दर कम ही रही है। इसी तरह, यह बात ध्यान में आती है कि मुसलमानों की दशकीय वृद्धि दर हमेशा से हिंदुओं की वृद्धि दर के साथ-साथ पश्चिम बंगाल की औसत वृद्धि दर की तुलना में काफी अधिक रही है। हिंदू जनसंख्या की

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 45

सीमा सुरक्षा बल को जांच के दौरान किशनगंज के पास भारत-बांग्ला देश सीमा पर 80 मी लंबी एक सुरंग मिली, जिसका उपयोग तस्करी व धुसपैठ के लिए किया जाता था।

वृद्धि दर के मुकाबले मुस्लिम जनसंख्या 1981 में 8.18 प्रतिशत अंक अधिक, 991 में 15.80 अंक अधिक, 2001 में 11.68 अंक अधिक और 2011 में 11 अंकों की अधिक दर्ज की गई। यही नहीं, वर्ष 2011 में पश्चिम बंगाल में मुसलिम जनसंख्या वृद्धि दर प्रदेश की औसत दशकीय वृद्धि की तुलना में 7.87 अंक अधिक थी। अगर जनसांख्यिकीय नजरिये से देखें तो इस तरह लगातार एक लंबे समय तक वृद्धि दर में इतना अधिक अंतर हैरत अंगेज ही नहीं बल्कि बेहद चिंताजनक हैं।

पश्चिम बंगाल में देश विभाजन के बाद जहाँ एक ओर प्रत्येक जनगणना के साथ हिंदुओं का संख्या बल क्षीण हुआ है वहीं दूसरी ओर तुलनात्मक रूप से मुसलमानों का राज्य की धार्मिक जनसंख्या में अनुपात तेजी से बढ़ा है। मुस्लिम जनसंख्या की वृद्धि और आकार में बढ़ोत्तरी बिना इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए हुई कि राज्य में ऐसी बढ़ी हुई आबादी को वहन करने की क्षमता नहीं है। इतना ही नहीं, परिवार नियोजन के राष्ट्रीय कार्यक्रम तथा गुणवत्ता वाले जीवन की पूरा उपेक्षा हुई। यह बात, हर जनगणना के साथ साफ होती गई है कि मुसलमानों की उच्च वृद्धि दर के दबाब के कारण पश्चिम बंगाल के सभी जिलों में मुस्लिम जनसंख्या बढ़ी है।

कुल प्रजनन दर (टीएफआर) का अर्थ एक महिला को उसके समूचे प्रजनन काल में पैदा हुए बच्चों की औसत संख्या है। 2001 की जनगणना पर आधारित एनएफएचएस के एक अध्ययन के अनुसार, पश्चिम बंगाल के सभी जिलों में मुस्लिम महिलाओं की कुल प्रजनन दर (टीएफआर)अत्यंत अधिक पाई गई। हिंदू महिलाओं के लिए 2.2 टीएफआर (2.1 के स्तर से थोड़ा ही अधिक) तो मुस्लिम महिलाओं में यह 4.1 होने का अनुमान लगाया गया था। पश्चिम बंगाल में मुसलमानों की जनसंख्या की वृद्धि और विशेष रूप से मुसलमानों की धार्मिक आनुपातिक हिस्सेदारी (2001

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 46

केरल में जहाँ मुसलमान किसी भी भारतीय मानक के हिसाब से गरीब नहीं हैं, वहाँ 2011 के दशक में मुस्लिम अनुपात 24.7 प्रतिशत से काफी अधिक 26.6 प्रतिशत दर्ज किया गया है। दूसरी ओर, पाकिस्तान और बांग्लादेश दोनों ही भारत के मुकाबले गरीब हैं, लेकिन फिर भी उनकी जन्म दर कम है। भारत में मुसलमानों की दशकीय जनसंख्या वृद्धि 24 प्रतिशत की तुलना में पाकिस्तान में दशकीय जनसंख्या वृद्धि 20 प्रतिशत और बांग्लादेश में सिर्फ 14 प्रतिशत रही है। ऐसे में भारतीय मुसलिम जनसांख्यिकी पर विचार के लिए सांस्कृतिकऔर राजनीतिक कारकों पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

में यह 25.2 प्रतिशत थी) के बढ़ने का एक सबसे बड़ा कारक मुस्लिम महिलाओं का अधिक टीएफआर होना था। वर्ष 2001 में राज्य के कुछ जिलों जैसे मुर्शिदाबाद (63.67 प्रतिशत), मालदा (49.72 प्रतिशत), उत्तर दिनाजपुर (47.36 प्रतिशत) बीरभूम (35.08 प्रतिशत), और दक्षिण 24 परगना (33.2 प्रतिशत) में मुसलमानों का प्रतिशत अप्रत्याशित था। पश्चिम बंगाल के जिलों में लगभग एक समान सामाजिक पर्यावरण को देखते हुए केवल महिलाओं की प्रजनन क्षमता ही इस अभूतपूर्व वृद्धि का एक मात्र कारण नहीं हो सकता क्योंकि यह प्राकृतिक मानव उत्पत्ति के सभी तर्क खारिज करता है। यह स्पष्ट है कि इस वृद्धि का एक बड़ा हिस्सा बांग्लादेशी घुसपैठ यानी बांग्लादेश के मुसलमानों का अवैध आगमन है।

दुर्भाग्य से भारत में और विशेष रूप से पश्चिम बंगाल में जनसंख्या वृद्धि का विषय वोट बैंक की राजनीति के साथ जुड़ गया है और इसी का परिणाम है कि यह जनसांख्यिकीय हमला किसी भी सार्वजनिक प्रतिरोध के बिना बेरोकटोक जारी है। इस तरह जनसंख्या का यह मौन हमला नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। देश के समाजशास्त्री इस अस्वाभाविक वृद्धि यानी मुसलमानों की उच्च जन्म दर का कारण सामाजिक भेदभाव और गरीबी बताते हैं। जबकि मुसलमानों की उच्च जन्म दर के लिए गरीबी को जिम्मेदार ठहराने का तर्क अर्धसत्य है। केरल में जहाँ मुसलमान किसी भी भारतीय मानक के हिसाब से गरीब

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 47

नहीं हैं, वहाँ 2011 के दशक में मुस्लिम अनुपात 24.7 प्रतिशत से काफी अधिक26.6 प्रतिशत दर्ज किया गया है। दूसरी ओर, पाकिस्तान और बांग्लादेश दोनों ही भारत के मुकाबले गरीब हैं, लेकिन फिर भी उनकी जन्म दर कम है। भारत में मुसलमानों की दशकीय जनसंख्या वृद्धि 24 प्रतिशत की तुलना में पाकिस्तान में दशकीय जनसंख्या वृद्धि 20 प्रतिशत और बांग्लादेश में सिर्फ 14 प्रतिशत रही है। ऐसे में भारतीय मुसलिम जनसांख्यिकी पर विचार के लिए सांस्कृतिकऔर राजनीतिक कारकों पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

इतना ही नहीं, देश में हिंदुओं की 14.5 प्रतिशत दशकीय वृद्धि की तुलना में मुसलमानों की दशकीय जनसंख्या वृद्धि लगभग 10 प्रतिशत अधिक है। जनगणना 2011 के अनुसार, देश की जनसंख्या में मुसलमानों के प्रतिशत में 2001 और 2011 के दशक में 0.8 प्रतिशत अंक(14.23 प्रतिशत या 17.22 करोड़) की वृद्धि हुई है। पिछले दशक में 1991 और 2001 के बीच कुल आबादी में मुसलमानों की हिस्सेदारी (1.73 प्रतिशत अंक से 13.43 प्रतिशत) अप्रत्याशित रूप से बढ़ी है। मुसलमान एकमात्र ऐसा धार्मिक समुदाय है, जिसकी कुल आबादी में हिस्सेदारी में इजाफा हुआ है। उल्लेखनीय है कि मध्य प्रदेश (24.29 प्रतिशत)को छोड़कर, सभी बड़े राज्यों में मुस्लिम जनसंख्या की वृद्धि दर 24.6 प्रतिशत के राष्ट्रीय औसत से अधिक है। वहीं 2001-2011 के दशक में हिंदुओं के प्रतिशत में 0.7 प्रतिशत अंक की गिरावट दर्ज की गई है। यही कारण है कि देश में पहली बार हिंदुओं की जनसंख्या 80 प्रतिशत से कम हुई है। अब देश की कुल आबादी का 79.8 प्रतिशत हिंदू है। भारत के 1971 के जनसंख्या मानचित्र की 2011 के जनसंख्या मानचित्र के साथ तुलना करने पर मुसलमानों की जनसंख्या का सच स्पष्ट हो जाता है। जहाँ 1971 के भारतीय जनसंख्या मानचित्र में जम्मू-कश्मीर के अलावा देश में केवल दो मुस्लिम बहुल जिले थे, केरल में मल्लापुरम और पश्चिम बंगाल में मुर्शिदाबाद। वहीं 2011 के भारतीय जनसंख्या मानचित्र को देखने से पता चलता है कि भारत में बिहार, पश्चिम बंगाल और असम में 10 से 15 ऐसे जिले हैं, जहाँ मुसलमान बहुमत में हैं। इस बहुमत का एक बड़ा कारण मुसलिम महिलाओं की अधिक प्रजनन क्षमता से अधिक बांग्लादेश से हो रही मुसलमानों की अवैध घुसपैठ है। इस हिसाब से मुसलमानों की वृद्धि दर को बांग्लादेश के संदर्भ में देखा जाना चाहिए।

लेखक'प्रज्ञा भारती' के राष्ट्रीय सहसंयोजक हैं।

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 48

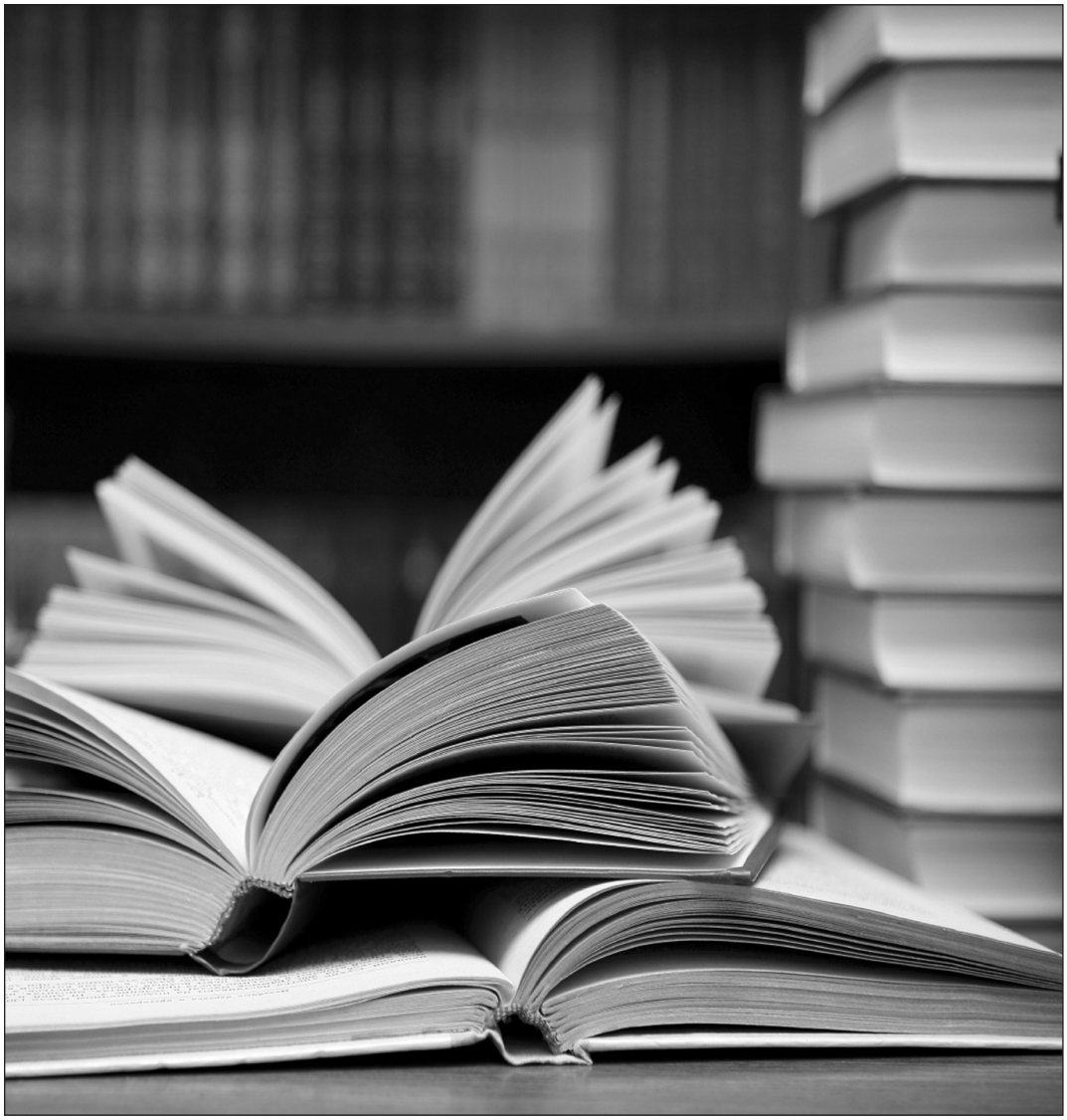

एक कहावत है कि अगर आप किसी झूठ को हजार बार दोहराएँगे, तो जन सामान्य को वह बात सत्य लगने लगेगी। देश में सक्रिय ईसाइ मिशनरियाँ इसी मनोविज्ञान के सहारे भारतीय शास्त्रीय ग्रंथों और देववाणी संस्कृत को ईसा मसीह और ईसाइयत से जोड़ने और अपने मत के प्रचार हथकंडे के रूप में प्रयुक्त कर रही हैं। यही नहीं इनका उद्देश्य आर्य-द्रविड़ का कृत्रिम संघर्ष पैदा कर, देश में सामाजिक विद्वेष के बीज बोना भी है। इस विषय में प्रस्तुत है समाज को सचेत करता प्रसिद्ध लेखक मनोज ज्वाला का यह लेख --

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 49

मनोज ज्वाला

भारतीय शास्त्रीय ग्रंथों के अपहरण की साजिश

संस्कृत भाषा का आविष्कार 'सेंट टामस्' ने भारत में ईसाइयत का प्रचार करने के लिए एक औजार के रूप में किया था और वेदों की उत्पत्ति सन् 150 ईस्वी के बाद ईसा मसीह की शिक्षाओं से हुई, जिसे बाद में धूर्त ब्राह्मणों ने हथिया लिया।'' जी हाँ! चौंकिए मत, आगे भी पढ़िए और पढ़ते जाइए। भारत के प्राचीन शास्त्रीय ग्रंथों का गुप-चुप, शांतिपूर्वक अपहरण करने में लगे हुए पश्चिमी बौद्धिक-अपहर्ताओं का यह भी दावा है ''भारत का बहुसंख्यक समुदाय मूल रूप से ईसाई ही है'' अर्थात् 'नूह' के तीन पुत्रों में से दो की संततियों के अधीन रहने को अभिशप्त 'हैम' के वंशजों का समुदाय है; किंतु भ्रष्ट और प्रदूषित होकर मूर्तिपूजक बन गया, तो 'हिंदू' या 'सनातनी' कहा जाने लगा।'' इतना ही नहीं, ''गीता और महाभारत भी ईसा की शिक्षाओं के प्रभाव में लिखे हुए ग्रंथ हैं ।'' और, यह भी ''दक्षिण भारत के महान संत-कवि, तिरुवल्लुवर तो पूरी तरह से ईसाई थे, उन्हें ईसा के प्रमुख शिष्यों में से एक, 'सेंट टामस' ने ईसाइयत की शिक्षा-दीक्षा दी थी; इस कारण उनकी कालजयी रचना- 'तरुकुरल' में ईसा की शिक्षाएँ ही भरी हुई हैं ।'' भारत के ज्ञान-विज्ञान की चोरी करते रहने वाले पश्चिम के 'बौद्धिक चोरों' की ऐसी सीनाजोरी का आलम यह है कि अब कतिपय भारतीय विद्वान ही नहीं, सत्ता-प्रतिष्ठान भी उनकी हाँ में हाँ मिलाने लगे हैं।

किसी सफेद झूठ को हजार मूर्खों से हजार-हजार बार कहलवा देने और हजार हाथों से उसे हजार किताबों में लिखवा देने से वह सच के रूप में स्थापित हो जाता है; स्थापित हो या न हो, वास्तविक सच उसी अनुपात में अविश्वसनीय तो हो ही सकता है। इसी रणनीति के तहत पश्चिमी साम्राज्यवादी उपनिवेशवाद

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 50

(अब नव-उपनिवेशवाद) और ईसाई-विस्तारवाद के झंडाबरदार बुद्धिजीवी-लेखक-भाषाविद् पिछली कई सदियों से 'नस्ल-विज्ञान' और 'तुलनात्मक भाषा-विज्ञान' नामक अपने छंद-शास्त्रों के सहारे समस्त भारतीय वाङ्मय का अपहरण करने में लगे हुए हैं । चिंताजनक बात यह है कि अपने देश का बुद्धिजीवी-वर्ग भी इस सरेआम बौद्धिक चोरी-डकैती-अपहरण-बलात्कार से या तो अनजान है या जानबूझ कर मौन साधे हुए है।

गौरतलब है कि माल-असबाब की चोरी करने के लिए घरों में घुसने वाले चोर जिस तरह से सेंधमारी करते हैं अथवा किसी खास चाबी से घर के ताले को खोल लेते हैं, उसी तरह की तरकीबों का इस्तेमाल इन बौद्धिक अपहर्ताओं ने भारतीय वाङ्मय में घुसने के लिए किया। सबसे पहले इन लोगों ने 'नस्ल-विज्ञान' के सहारे आर्यों को यूरोपीय-मूल का होना प्रतिपादित कर गोरी चमड़ी वाले ईसाइयों को सर्वश्रेष्ठ आर्य व उत्तर-भारतीयों को प्रदूषित आर्य एवं दक्षिण भारतीयों को आर्य-विरोधी 'द्रविड' घोषित कर भारत में आर्य-द्रविड-संघर्ष का कपोल-कल्पित बीजारोपण किया और फिर अपने 'तुलनात्मक भाषा-विज्ञान' के सहारे संस्कृत को यूरोप की ग्रीक व लैटिन भाषा से निकली हुई भाषा घोषित कर तमिल-तेलुगु को संस्कृत से भी पुरानी भाषा होने का मिथ्या-प्रलाप स्थापित करते हुए विभिन्न भारतीय शास्त्रों व ग्रंथों के अपने मनमाफिक अनुवाद से बेसिर-पैर की अपनी उपर्युक्त स्थापनाओं को बलात् प्रमाणित-प्रचारित भी कर दिया।

पश्चिमी साम्राज्यवादी उपनिवेशवाद (अब नव-उपनिवेशवाद) और ईसाई-विस्तारवाद के झंडाबरदार बुद्धिजीवी-लेखक-भाषाविद् पिछली कई सदियों से 'नस्ल-विज्ञान' और 'तुलनात्मक भाषा-विज्ञान' नामक अपने छंद-शास्त्रों के सहारे समस्त भारतीय वाङमय का अपहरण करने में लगे हुए हैं ।

ध्यातव्य कि तमिल भाषा में 'तिरुकुरल' वैसा ही लोकप्रिय सनातनधर्मी-ग्रंथ है, जैसा उत्तर भारत में रामायण, महाभारत अथवा गीता। इसकी रचना वहाँ के महान संत कवि तिरूवल्लुवर ने की है। 19वीं सदी के मध्याह्न में एक कैथोलिक ईसाई मिशनरी जार्ज युग्लो पोप ने अंग्रेजी में इसका अनुवाद किया, जिसमें उसने प्रतिपादित किया कि यह ग्रंथ 'अ-भारतीय' तथा 'अ-हिंदू' है और ईसाइयत से जुड़ा हुआ है। उसकी इस स्थापना को मिशनरियों ने खूब प्रचारित किया। उनका यह प्रचार जब थोड़ा जम गया, तब उन्होंने उसी अनुवाद के हवाले से यह कहना शुरू कर दिया कि 'तिरुकुरल' ईसाई-शिक्षाओं का ग्रंथ है और इसके रचयिता संत तिरूवल्लुवर ने ईसाइयत से प्रेरणा ग्रहण कर इसकी रचना की थी, ताकि अधिक से अधिक लोग ईसाइयत की शिक्षाओं का लाभ उठा सकें। इस दावे की पुष्टि के लिए उन्होंने उस अनुवादक द्वारा गढ़ी गई एक कहानी का सहारा लिया, जिसमें यह कहा गया है ईसा के एक प्रमुख शिष्य सेंट टामस ने ईस्वी सन् 52 में भारत आकर ईसाइयत का प्रचार किया, तब उसी दौरान तिरूवल्लुवर को उसने ईसाई धर्म की दीक्षा दी थी। हालांकि मिशनरियों के इस दुष्प्रचार का कतिपय निष्पक्ष पश्चिमी विद्वानों ने ही उसी दौर में खंडन भी किया था, किंतु उपनिवेशवादी ब्रिटिश सरकार समर्थित उस मिशनरी प्रचार की आँधी में उनकी बात यों ही उड़ गई। फिर तो कई मिशनरी संस्थाएँ इस झूठ को सच साबित करने के लिए ईसा-शिष्य सेंट टामस के भारत आने और हिंद महासागर के किनारे ईसाइयत की शिक्षा फैलाने संबंधी किस्म-किस्म की कहानियाँ गढ़ कर अपने-अपने स्कूलों में पढ़ाने लगीं। तदोपरांत उन स्कूलों में ऐसी शिक्षाओं से शिक्षित हुए

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 51

भारत की नई पीढ़ी के लोग ही इस नए ज्ञान को और व्यापक बनाने के लिए इस विषय पर विभिन्न कोणों से शोध अनुसंधान भी करने लगे। भारतीय भाषा-साहित्य में पश्चिमी घुसपैठ को रेखांकित करने वाले विद्वान लेखक राजीव मल्होत्रा और अरविंदन नीलकंदन ने ऐसे ही अनेक शोधार्थियों में से एक तमिल भारतीय-'एम.देइवनयगम' के तथाकथित शोध-कार्यों का विस्तार से खुलासा किया है। उनके अनुसार, देइवनयगम ने मिशनरियों के संरक्षण और उनके विभिन्न शोध-संस्थानों के निर्देशन में अपने कथित शोध के आधार पर अब सरेआम यह दावा कर दिया है कि 'तिरूकुरल' ही नहीं, बल्कि चारों वेद और भगवत गीता, महाभारत, रामायण

तमिल के ग्रंथ 'तिरुकुरल' की रचना संत कवि तिरूवल्लुवर ने की थी। एक ईसाई मिशनरी जार्ज युग्लो पोप ने अंग्रेजी में इसका अनुवाद कर प्रतिपादित किया कि यह ग्रंथ ईसाइयत से जुडा हुआ है।

भी ईसाई-शिक्षाओं के प्रभाव से प्रभावित एवं उन्हीं को व्याख्यायित करने वाले ग्रंथ हैं और संस्कृत भाषा का आविष्कार ही ईसाइयत के प्रचार हेतु हुआ था। उसने वेदव्यास को द्रविड बताते हुए उनकी समस्त रचनाओं को गैर-सनातनधर्मी होने का दावा किया है। अपने शोध-निष्कर्षों को उसने 18वीं शताब्दी के यूरोपीय भाषाविद् विलियम जोंस की उस स्थापना से जोड़ दिया है, जिसके अनुसार सनातन धर्म के प्रतिनिधि-ग्रंथों को 'ईसाई सत्य के भ्रष्ट रूप' में चिह्नित किया गया है ।

सन् 1969 में देइवनयगम ने एक शोध-पुस्तक प्रकाशित की-'वाज तिरूवल्लुवर, क्रिश्चियन', जिसमें उसने साफ शब्दों में लिखा है सन् 52 में ईसाइयत का प्रचार करने भारत आए सेंट टामस ने तमिल संत कवि-तिरूवल्लुवर का धर्मांतरण करा कर उन्हें ईसाई बनाया था। अपने इस मिथ्या-प्रलाप की पुष्टि के लिए उसने संत-कवि की कालजयी कृति. 'तिरूकुरल' की कविताओं की तदनुसार प्रायोजित व्याख्या भी कर दी और उसकी सनातन-धर्मी अवधारणाओं को ईसाई-अवधारणाओं में तब्दील कर दिया। इस प्रकरण में सबसे खास बात यह है कि तमिलनाडू की 'द्रमुक'-सरकार के तत्कालीन मुख्यमंत्री ने उस किताब की प्रशंसात्मक भूमिका लिखी है और उसके एक मंत्री ने उसका विमोचन किया।

इस बौद्धिक अपहरण-अत्याचार को मिले उस राजनीतिक संरक्षण से प्रोत्साहित होकर देइवनयगम दक्षिण भारतीय लोगों को 'द्रविड' और उनके धर्म को 'ईसाइयत के निकट, किंतु सनातन धर्म से पृथक' प्रतिपादित करने के चर्च-प्रायोजित अभियान के तहत 'ड्रेवेडियन रिलिजन' नामक पत्रिका भी प्रकाशित करता है। उस पत्रिका में लगातार यह दावा किया जाता रहा है कि 'सन् 52 में भारत आए सेंट टामस द्वारा ईसाइयत का प्रचार करने के औजार के रूप में संस्कृत का उदय हुआ और वेदों की रचना भी ईसाई शिक्षाओं से ही दूसरी शताब्दी में हुई है, जिन्हें धूर्त ब्राह्मणों ने हथिया लिया। वह यह भी प्रचारित करता है ''ब्राह्मण, संस्कृत और वेदांत बुरी शक्तियाँ हैं और इन्हें तमिल समाज के पुनर्शुद्धीकरण के लिए नष्ट कर दिए जाने की जरूरत है।''

ऐसी वकालत करने के पीछे वे लोग सक्रिय हैं, जिनकी पुरानी पीढ़ी के विद्वानों-भाषाविदों यथा विलियम जोंस व मैक्समूलर आदि ने 18वीं सदी में ही संस्कृत को ईसा-पूर्व की और भारतीय आर्यों की भाषा होने पर मुहर लगा रखी है; किंतु ये लोग अब कह रहे हैं कि नहीं, इनके उन पूर्वजों से गलती हो गई थी। दरअसल संस्कृत को अब द्रविड़ों की भाषा बताने वाले इन षड्यंत्रकारियों की रणनीति है, दो कदम आगे और दो कदम पीछे चलना।

लेखक वरिष्ठ साहित्यकार हैं।

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 52

गाँव मनुष्य को स्वतंत्र विचार व सामूहिक हित की ओर प्रेरित करते हैं। अतः किसी भी राष्ट्र के समग्र विकास तथा सतत् निरंतरता के लिए जितने अधिक गाँव हो सके उतना ही शुभ है। शहरों का गाँवों के समीप होना सबके हित में है, क्योंकि उससे शहर में बसने वाले गाँव की आत्मीयता की नदी में यदा-कदा डुबकी ले ही सकते हैं, और गाँव भी नए-नए ज्ञान से वंचित नहीं होंगे। इंटरनेट के आविष्कार के साथ विश्व एक नए युग में पदार्पण कर चुका है। मनुष्य के एक दूसरे से जुड़े रहने के लिए अब भौतिक दूरियों का कोई खास महत्त्व नहीं रहा। ऐसे में, निश्चित ही नए गाँव भी नए स्वरूप में ढलेंगे, जहाँ ज्ञान व विज्ञान सहजता से उपलब्ध होंगे। इस बात को ध्यान में रखकर ही होगी 21वीं सदी के गाँव व शहर की नई संरचना।

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 53

तुलसी टावरी

क्यों चाहिए गाँव

भारत के कोने-कोने में, यह धारणा दिन-प्रतिदिन बलवती हो रही है, कि यदि कोई भी व्यक्ति तरक्की करना चहता है, तो उसे शहर का रुख करना जरूरी है। जिसे पिछड़ा बने रहना है, वही गाँव में पड़ा रहे। इस धारणा के चलते, हमारे नीति-निर्धारकों ने बिना गंभीर चिंतन किए, गिने-चुने शहरों को ही राष्ट्र की उन्नति का केंद्र बिंदु बना रखा है। सात लंबे दशक गुजरने के बाद, आज भी अधिकतम धन व ज्ञान को हमने कुछ ही शहरों में केंद्रित कर रखा है। हमारी इस भूल का नतीजा है कि आज जहाँ एक तरफ गाँव वीरान और उजाड़ होते जा रहे हैं, शहर घनघोर भीड़ के दबाव में मरने के कगार पर पहुँच चुके हैं। चाहे मुंबई हो या कोलकत्ता, दिल्ली हो या बेंगलुरु, हर शहर अपनी विशिष्ट चिती खोकर नरक बनता जा रहा है। जब धन व ज्ञान रूपी शहद के सभी छत्ते हमारी सरकारें शहरों में ही लगाती रहेंगी, तो अकेले इनसान की क्या बिसात।

उसे तो जहाँ आमदनी व उन्नति ज्यादा दिखेगी वहाँ जाना ही होगा। हर मनुष्य की दो मूलभूत भूख होती हैं, पहली–समुचित आमदनी की भूख, परिवार को इज्जत से पालने के लिए, दूसरी ज्ञान की भूख, स्वयं को ऊँचा उठाने के लिए। कैसी विडंबना है कि, जहाँ महानगरों में 30,000 लोग रहते हैं एक वर्ग कि.मी. में, वहीं शहर के ठीक बाहर मात्र 300 लोग, उतनी ही जगह में। कल्पना कीजिए कि एक फुटबॉल फील्ड के 90 प्रतिशत जगह को खाली रखा जाए और खिलाड़ियों को 10 प्रतिशत जगह में ही खेलने के लिए बाध्य किया जाए, ऐसी अनोखी गलत अर्थव्यवस्था का न सिर्फ हमने निर्माण किया है, बल्कि इसी कुव्यवस्था को आधार बनाकर हम सारी नीतियाँ बनाए चले जा रहे हैं, जैसे की यह हमारी बाध्यता है। फिर भले ही 50 प्रतिशत शहरी लोग गंदी नालियों में कीड़े-मकोड़े सरीखे रहें, या कि शेष 40-45 प्रतिशत

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 54

छोटे-छोटे मगर अत्यंत महँगे पिंजरों को ही घर कहें, जिसका कर्ज उन्हें जीवन भर चुकाना है। देश का 90 प्रतिशत धन 10 प्रतिशत लोगों तक ही सिमट रहा है, जबकि 90 प्रतिशत लोग जीने के मूलभूत चीजों की जद्दोजहद में ही फंसे हुए।

क्या सचमुच हमारे सामने यही एक राह है? गाँव में रहने वालों को शहरों में लाना, शहरों को बिना किसी सीमा के बड़ा करते जाना। क्या सचमुच शहर ही उन्नति के प्रतीक हैं? कुछ लोग कहते हैं कि आखिर क्या रखा है गाँव में? खेती? अनाज पैदा करने के लिए आखिर कितने लोगों की जरूरत है? अमेरिका जैसे सफल देश में तो मात्र 2 प्रतिशत लोग ही खेती करते हैं, टेक्नोलोजी की सहायता से। गाँव के बच्चे भी पढ़े-लिखे और शहरों में आकर रहें, भला वे क्यों वंचित रहें शहर से मिलने वाली प्रगति से? भले ही वे नालियों में रहें या पिंजरों में। आखिर कभी तो वे या उनके बच्चे पहुँचेंगे किसी बड़े मुकाम पे?

प्रश्न यह उठता है कि, क्या इतनी सीमित है हमारे विकास की अवधारणा कि हमारे 90 प्रतिशत लोग येन केन प्रकारेण जी लें, बस! दो समय की रोटी और रहने को एक छत, और ढ़ेर सारी झूठी आशाएँ केंद्रीयकरण की क्लिष्टता की आड़ में छुपकर कोई स्वार्थी तबका सबको लूटने की साजिश रच रहा हो, तो क्या आश्चर्य है?

आखिर क्या कमी है हममें या हमारे राष्ट्र में? न धरती कम, न नदियाँ कम, न खेत कम, न खनिज कम, और न ही ज्ञान व विज्ञान में योग्यता कम। और तो और हमारी प्राचीन संस्कृति व सभ्यता की ताकत ऐसी विशाल कि चीन के एक विद्वान हु शीह, ने हमारे सम्मान में यहाँ तक कहा कि भारत तो चीन पर दो हजार वर्षों से सांस्कृतिक रूप से राज करता आ रहा है, बिना एक भी सिपाही भेजे, सीमा के पार।

हमारी असली कमी यह है कि हमने सोचने का काम कुछ ही लोगों को देकर, अपना भविष्य गिरवी में रख दिया है। यदि हम सही ढ़ंग से सोचना शुरू करें तो सही प्रकार की शहर व गाँव की जुगलबंदी से, हम

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 55

सभी के जीवन में समृद्धि व खुशियाँ ला सकते हैं। न शहरों को मारने की जरूरत है, और न ही गाँवों को छोड़ने की।

एक नजर यह तो देखें कि क्यों जरूरी हैं गाँव भी व शहर भी हमारी सार्वभौमिक राष्ट्रीय उन्नति के लिए । मनुष्य की उन्नति में तीन बातें नितांत जरूरी हैं :

- प्यार
- पैसा
- पहचान (समाज में सम्मान)।

हर मनुष्य की पहली और आखिरी तड़प प्यार की ही होती है, जो सामान्यतः परिवार ही से मिल पाता है।

गाँव हमारी संस्कृति में उस स्थान को कहते हैं, जहाँ मनुष्य का दूसरे मनुष्यों व प्रकृति से आत्मीयता का रिश्ता होता है। गाँव में स्वयं की उन्नति उसके पुरुषार्थ से ही संभव है न कि किसी के शोषण से या छल से।

परिवार जिसमें एक दूसरे के लिए संपूर्ण समर्पण का होना, बिना लाभ-हानि की चिंता किए, जहाँ एक ओर पैसा व पहचान पाना हर व्यक्ति का सपना हो सकता है, मगर परिवार से मिलने वाले निश्छल प्यार के सामने सब गौण लगते हैं। सदियों पहले भारत के चिंतकों ने इस अमूल्य सत्य को पहचाना और तभी सामाजिक व्यवस्था के मूल में परिवार की गरिमा को इतना गहरा उतारा कि हजारों वर्ष बीतने के बाद भी आज भी इसकी महिमा शाश्वत् है। चाहे पैसा या पहचान कितना भी घट जाए, व्यक्ति का आखिरी सहारा हमेशा से परिवार की अंदरूनी ताकत ही रही है और रहेगी, हर युग में। मनुष्य की दूसरे मनुष्य के प्रति इसी अनमोल भावना को भारतीय मनीषियों ने पूरे समाज की जड़ बनाकर ऐसे गाँव की रचना की जहाँ लोग आपस में लेन-देन तो करें मगर जहाँ भी संभव हो सके, परिवार की भूमिका भी निभाएँ। यही कारण है कि आज भी गाँव के किसी घर में विवाह होता है, तो पूरा गाँव उसे मिलकर मनाता है। प्यार की इसी भावना को भारतीय समाज ने प्रकृति से जोड़ा, हर जीव से जोड़ा, इस हद तक कि, हर वृक्ष हमारे लिए भगवान का स्वरूप बन गया। कुल मिलाकर गाँव हमारी संस्कृति में उस स्थान को कहते हैं, जहाँ मनुष्य का दूसरे मनुष्यों व प्रकृति से आत्मीयता का रिश्ता होता है। गाँव में स्वयं की उन्नति उसके पुरुषार्थ से ही संभव है, न कि किसी के शोषण से या छल से। यह सही है कि इस भावना पर आघात हो रहे हैं, फिर भी समाज के जड़ में आज भी सच्चे गाँव जिंदा हैं।

यदि हम इतिहास में जाएँ, तो देखेंगे कि शहरों का निर्माण कोई नई बात नहीं हैं। किसी भी राष्ट्र की उन्नति में शहरों की एक निश्चित भूमिका है। गाँव स्वाभाविक रूप से छोटे-छोटे समूह ही हो सकते हैं, किसी एक अंश को धारण किए हुए। शहर यानी वह जगह जहाँ बहुत प्रकार के विविध ज्ञान व अनुभवों से युक्त बड़े-बड़े समूह रहते हों। इससे विभिन्न विचारों के आदान-प्रदान की संभावनाएँ भी धीरे-धीरे विकसित हो सकें। नए ज्ञान के विकास व सृजन की समुचित व्यवस्था भी एक विशेष प्रकार के शहर के निर्माण का कारण बन सकती है। हर ऐसा शहर पूरे राष्ट्र यानी समस्त गाँवों को यह ज्ञान देगा ही। इस तरह शहर व गाँव पूरक होते ही हैं। अब विषय यह है कि यदि गाँवों की सारी खूबियाँ शहरों में स्थापित की जा सकें तो फिर गाँव चाहिए ही क्यों? पुनः इतिहास ही गवाह है कि मानव समाज के लिए यह संभव ही नहीं, इसीलिए भारत के गाँव अपनी समुचित पारिवारिक सामाजिकता के साथ युगों-युगों से आज भी जिंदा हैं। बल्कि यदि हम यह कहें कि प्राचीन शहरों के नामोनिशा मिट जाने के बावजूद भी, यदि भारत आज भी टिका है, तो हमारे इन्हीं सुसंस्कृत गाँवों

यही है उनकी खुशियों का कारण, और उनकी स्वतंत्रता व आत्मनिर्भरता का।''(संदर्भ - Mutiny, Before and After. PC Ray, Edinburgh, 1885)

मगर हमारी पूरी संतुष्टि बिना गहरे विश्लेषण के संभव नहीं हो पाती। अतः चलिए थोड़ा और गहरा उतरें।

क्यों रहे गाँव की ताकत से। वह भी अपनी संपूर्ण सभ्यता के विभिन्न आयामों को पूरी तरह जीवंत रखे-अपने व्यवहार में, लोकगीतों में, अपने खानपान में, अपनी जीवनचर्या में, अपनी पूजाओं में।

देखिए क्या लिखा है भारतीय गाँवों की प्रशंसा में, ब्रिटेन के विद्वान सर चार्ल्स मेटकाल्फ ने 19वीं सदी में -''गाँव का समाज एक छोटा राज्य है, जिसकी सारी आवश्यकताएँ उसके भीतर ही उपलब्ध हैं, और बाहरी क्षेत्रों पर कोई खास निर्भरता नहीं। वे सतत् जिंदा रहते हैं, जबकि और कुछ भी सतत् नहीं। कितने ही राजघराने चुक गए, क्रांति के बाद क्रांति; हिंदू, पठान, मुगल, मराठा, सिक्ख, अंग्रेज-सभी ने राज किया बारी-बारी मगर, गाँव का समाज वैसा ही है .... गाँव के समाज का यह संगठन, अपने में एक अलग छोटा-सा राज्य, इसकी भूमिका सबसे मुख्य रही है, मेरी समझ से, भारत के लोगों को बचाए रखने में अनेक आक्रमणों व परिर्वतनों की तकलीफों के सहने के बाद भी, और जिंदा, और क्यों मर गये प्राचीन शहर? इसी में समाहित है इस बात का भी उत्तर कि क्यों चाहिए हमें आज भी गाँव और कैसे स्वरूप में चाहिए हमें शहर?

जब भी मनुष्यों का समूह बड़ा होने लगता है (जैसे कि शहर के निर्माण में), हर व्यक्ति का एक दूसरे से रिश्ता बनाना व निभाना कठिन होता जाता है। ऐसे में अनजान व्यक्ति के प्रति सद्भाव व प्यार पूरी तरह रख पाना संभव ही नहीं रह जाता। रिश्तों को अपना समय दिए बिना कोई बना ही नहीं सकता। अतः गाँव जो एकात्मता का स्वरूप हो सकता है, सभी व्यक्तियों के एक ही माला में गुँथे हार, के समान, वह शहर में संभव ही नहीं। शहर की दूसरी तकलीफ यह है कि, अनजान व्यक्तियों के बड़े समूहों को व्यवस्थित करना जरूरी हो जाता है। जितने बड़े समूह उतने ही क्लिष्ट व्यवस्थाएँ। व्यवस्था का सही या गलत चलना उनकी नीयत पर होता है, जिन चुनिंदा लोगों के पास उस सिस्टम के अधिकार होते हैं। यही वह अवसर होता है, जहाँ मनुष्य

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 57

भारत के गाँव अपनी समुचित पारिवारिक सामाजिकता के साथ युगों-युगों से आज भी जिंदा हैं। बल्कि यदि हम यह कहें कि प्राचीन शहरों के नामोनिशां मिट जाने के बावजूद भी, यदि भारत आज भी टिका है, तो हमारे इन्हीं सुसंस्कृत गाँवों की ताकत से। वह भी अपनी संपूर्ण सभ्यता के विभिन्न आयामों को पूरी तरह जीवंत रखे-अपने व्यवहार में, लोकगीतों में, अपने खानपान में, अपनी जीवनचर्या में और अपनी पूजाओं में।

स्वार्थी हो सकता है, खासकर उनके प्रति जिनसे उसका कोई आत्मीय लगाव नहीं। ऐसे में दूसरों का शोषण कर स्वयं की उन्नति की राहें बनाना छल व चतुराई का विषय बनना स्वाभाविक ही है। और इस प्रक्रिया में यदि शासक व बुद्धिमान भी शामिल हो जाएँ, तो समाज में अन्याय, भ्रष्टाचार व शोषण की पराकाष्ठा होकर ही रहेगी, जैसा आज दिख रहा। सार की बात यह है कि, जहाँ एक ओर गाँव में व्यवस्था मनुष्यों की स्वप्रेरणा से चलती है, शहर में मनुष्यों पर सिस्टम (यानि एक प्रकार की मशीन) का नियंत्रण होना जरूरी हो जाता है। और मशीनों के नियंत्रण में कुछ हद तक मनुष्य भी मशीनों-सा भावनाहीन व्यवहार करने लगे तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। इतनी ही गिरावट काफी नहीं। कमजोर आत्मविश्वास के मनुष्य भीड़-रूपी सिस्टम बनकर, स्वयं के विचार व व्यक्तित्व भी खोने लगते हैं। ऐसी ही विकराल परिस्थिति आज जो हम चारों ओर देख रहे हैं, यह निश्चित ही विश्लेषण का विषय है।

कुल मिलाकर देखें तो, शहर विविध ज्ञान के सृजन के लिए व राष्ट्र की सामयिक व्यवस्था के लिए जरूरी हैं। परंतु जो एकात्मता व आत्मीयता की निरंतर नदी गाँव में सहज रूप से बह सकती है, वह शहर में कभी-कभी, कहीं-कहीं, कुछ क्षणों के लिए ही संभव है। तथा जहाँ शहर के सिस्टम मनुष्य को भावनाहीन, स्वार्थी व परतंत्र बनने की ओर ढ़केलते हैं, गाँव उसे एक स्वतंत्र विचार व सामूहिक हित की ओर प्रेरित करते हैं। अतः किसी भी राष्ट्र के समग्र विकास तथा सतत् निरंतरता के लिए जितने अधिक गाँव हो सके उतना ही शुभ है। शहरों का गाँवों के समीप होना सबके हित में है, क्योंकि उससे शहर में बसने वाले गाँव की आत्मीयता की नदी में यदा-कदा डुबकी ले ही सकते हैं, और गाँव भी नए-नए ज्ञान से वंचित नहीं होंगे। मगर यह भी उतना ही जरूरी है कि शहर इतने ही बड़े हों (5-10 कि.मी. से कम) कि वे भीड़ के दबाव से मरने न लगें और रहने वालों के लिए नरक न बन जाएँ। साथ ही इंटरनेट के आविष्कार के साथ विश्व एक नए युग में पदार्पण कर चुका है। मनुष्य के एक दूसरे से जुड़े रहने के लिए अब भौतिक दूरियों का कोई खास महत्त्व नहीं रहा। ऐसे में, निश्चित ही नए गाँव भी नए स्वरूप में ढ़लेंगे, जहाँ ज्ञान व विज्ञान सहजता से उपलब्ध होंगे। इस बात को ध्यान में रखकर ही होगी 21वीं सदी के गाँव व शहर की नई संरचना। जैसे हमारे शरीर में है विकेंद्रित-करोड़ों छोटे-छोटे सेल, और कुछ केंद्रित-बड़े अवयव (हृदय, किडनी, लिवर इत्यादि) आपस में सही-सही जुड़े हुए। ऐसे ही होंगे अलग-अलग प्रतिभा को निखारते लाखों नए गाँव व सैकड़ों नए शहर, और पूरा राष्ट्र 'एक संपूर्ण जीवंत व्यक्तित्व'।

शहर नहीं, गाँव चलेंगे ;
नौकर नहीं, मालिक बनेंगे।

लेखक सामाजिक सरोकारों के समर्थ चिंतक हैं।

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 58

गर्मियों में व्यक्ति को अपने स्वास्थ्य के प्रति बहुत सचेत रहना चाहिए, क्योंकि थोड़ी सी भी लापरवाही या चूक स्वास्थ्य के लिए हानीकारक सिद्ध हो सकती है। इस मौसम में धूप के समय जब घर से बाहर निकलें तो शरीर कपड़े से ढकरा हुआ होना चाहिए। अपने भोजन पर भी विशेष ध्यान दें। भोजन ताजा, सुपाच्य व हल्का हो तथा वह बासी नहीं होना चाहिए, क्योंकि इस मौसम में जीवाणु और फफुंद के कारण खाद्य पदार्थ जल्दी ही खराब हो जाते हैं। बच्चों का विशेष ध्यान रखें।

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 59

डॉ. सुनील आर्य

गर्मी से कैसे करें अपना बचाव

गर्मियाँ हमारे स्वास्थ्य के लिए बहुत संवेदनशील होती हैं। इसीलिए हम गर्मियों में अनेक प्रकार की बीमारियों से घिर जाते हैं। आमतौर पर गर्मियों में होने वाली बीमारियों के दो कारण होते हैं। पहला तेज धूप और दूसरा संक्रमण। धरती पर सूर्य की तेज और सीधी किरणों की वजह से तापमान में खासी बढ़ोतरी होती है। हवा भी गरम होकर तेज लू बन जाती है, खूब पसीना आता है जिसके कारण शरीर में पानी व लवण की मात्रा घटने लगती है और डिहाइड्रेशन होने लगता है, जिसकी वजह से बहुत थकावट, सर दर्द, ज्यादा पानी पीने की इच्छा, मुँह सूखना, पेट दर्द, मितली, रक्तचाप का गिरना, चक्कर, कमजोरी, नाक से खून आना इत्यादि तथा त्वचा संबंधी विकार होने लगते हैं।

दूसरा कारण होता है संक्रमण, तापमान बढ़ने से खाने-पीने की वस्तुएँ जल्दी बिगड़ने लगती हैं, तरह-तरह के जीवाणु, विषाणु और फफूंद पनपने लगते है। खूब धूल और मक्खी मच्छरों कि वजह से भोजन संक्रमित हो जाता है और ऐसा संक्रमित भोजन खाने से हमारे बीमार होने की आशंका बढ़ जाती है। संक्रमण की वजह से होने वाली बीमारियाँ– उलटी, दस्त, पीलिया, टाइफाइड, पेटदर्द, कोलाइटिस, हैजा, फूड पोइजनिंग, वायरल बुखार, नेत्र फ्लू, डेंगू मलेरिया इत्यादि होने लगते हैं।

ग्रीष्म ऋतु में भोजन व रहन-सहन संबंधी 'क्या करें-क्या न करें'

गर्मियों के मौसम में स्वाभाविक रूप से ही पाचक अग्नि कमजोर रहने से भूख और हाजमा कमजोर रहता है और बहुत खुश्की बढ़ती है इसलिए पचने में हल्का, स्निग्ध व मधुर रस युक्त भोजन करना चाहिए जैसे सांठी, चावल, मूंग, मसूर, जौ, ज्वार, दूध दलया,जौ की राबड़ी, घीया, तोरई, पेठा, परवल व प्याज इत्यादि।

- दही पतला करके, ठंडे पेय, फलों के ताजा रस, जौ व चना का

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 60

सत्तू, नारियल पानी, नींबू की शिकंजी, गन्ने का रस, घर में बने अनेक प्रकार के शरबत, खांड का पानी, गुलकंद, गौंद कतीरा,आमी का पन्ना, बेल का पन्ना या खस का शरबत, जलजीरा इत्यादि गर्मियों में ना केवल ठंडक देकर मन को तृप्त करते हैं बल्कि पौष्टिक भी होते हैं इसलिए इनका खूब सेवन करना चाहिए।

- रसीले और ठंडे फलों में तरबूज, खरबूजा, शहतूत, लीची,अनार, संतरा, मौसमी, आड़ू, आम, फालसा आदि फल गर्मियों में काफी ठंडक और पोषण देते हैं ।
- हरा धनिया, पोदीना, जीरा, सौंफ, प्याज, नींबू का प्रयोग पाचनतंत्र को मजबूती देते हैं। इसलिए गर्मियों में इनका पर्याप्त सेवन विभिन्न रूपों में करना चाहिए।
- सुबह जल्दी उठकर खूब सारा पानी पीना चाहिए। इसके अतिरिक्त दिन भर में पर्याप्त जल का सेवन करना चाहिए।
- प्रातः भ्रमण और बहुत हल्का व्यायाम करना चाहिए। गर्मियों में ज्यादा व्यायाम हानिकारक है ।
- ठंडक में रहना, दिन में सोना उपयोगी है।
- पसीने को सोखने वाले सूती कपड़े पहनने चाहिएँ व कम से कम दो बार नहाना चाहिए ।

क्या न करें

पचने में भारी, बहुत गर्म तासीर वाला, खुश्क और तीखे मिर्च मसालों वाला भोजन नहीं खाना चाहिए, मांसाहार, तला भुना, मैदा व बेसन से बने पदार्थ अधिक चिकनाई युक्त व बासी भोजन न करें- जैसे पूरी, पकोड़े, पराठे इत्यादि।

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 61

- चाय, कॉफी (चाहे ठंडी ही हो) कोल्ड ड्रिंक्स, अल्कोहल गर्म तासीर की होने के साथ-साथ शरीर से पानी की मात्र को ज्यादा निकालते हैं। इसी प्रकार बियर को ठंडा मानना भी भ्रम ही है इसलिए गर्मियों में इनसे बचना चाहिए।
- धूप व गर्म हवा से यथा संभव बचना चाहिए।
- सौंदर्य प्रसाधनों का प्रयोग अधिक पसीना लाने वाला या पसीना रोकने वाला हो सकता है, इसलिए संभल कर प्रयोग करें या ना ही करें।
- सड़क किनारे मिलने वाले उघडे हुए, कटे फल व ठेले वालों के प्रदूषित खाद्य पदार्थों से बचना चाहिए। सिंथेटिक कपड़ों से बचना चाहिए।
- अधिक व्यायाम नहीं करना चाहिए।

गर्मियों में विभिन्न फलों के रस और शरबत बिना प्रिजर्वेटिव सुरक्षित रखने की विधि

नींबू, फालसा, संतरा, मौसमी, लीची, अन्नानास आदि फलो के रस, आंबी, इमली, बेल का पन्ना तथा गुलाब केवड़ा, खस, पोदीना आदि के शरबत गर्मियों में काफी ठंडक व पोषण देते हैं। बाजार में मिलने वाले ये पेय अनेक प्रकार रासायनिक प्रिजर्वेटिव, रंगों व कृत्रिम खुशबुओं से बने होते हैं। इन सभी को आराम से घर पर ही तैयार किया जा सकता है और वह भी बिना मिलावट के। जिस भी फल का रस तैयार करना है उसे खुले बर्तन में लेकर आग पर उबालें और रस से दुगुनी या डेढ़ गुनी चीनी या खांड डालकर चाशनी तैयार कर लें। इसी प्रकार गुलाब, केवड़ा, खस अर्क लेकर दुगुनी चीनी डालकर गाढ़ा शरबत बना लें। 200 मि.ली. ठंडे पानी में 20-30 मि.ली. तैयार गाढा शरबत मिलाएँ, बहुत स्वादिष्ट, पौष्टिक और मिलावट रहित शीतल पेय तैयार है, इसे बनाकर सुरक्षित रखा जा सकता है।

लेखक प्रसिद्ध आयुर्वेद चिकित्सक हैं।

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 62

मनोगत

मान्यवर महोदय,

मंगल विमर्श का जुलाई 2017 अंक प्रबुद्ध पाठकों को समर्पित है। पत्रिका के विषय में आपकी प्रतिक्रियाएँ और सुझाव हमारा मार्गदर्शन करते हैं। हमारा प्रयास है कि पत्रिका में प्रकाशित लेखों को लेकर स्वस्थ चर्चा प्रारंभ हो जिससे समाज लाभावित हो सके। मंगल विमर्श के अप्रैल, 2016 अंक में श्री दामोदर शांडिल्य जी का विचारपूर्ण आलेख मातृ ऋण चुकाए बिना मुक्ति संभव नहीं प्रकाशित हुआ था। इस लेख पर श्री हिम्मत सिंह सिन्हा जी की विद्वतापूर्ण टिप्पणी अक्तूबर, 2016 अंक में इसी पृष्ठ पर प्रकाशित हुई थी। श्री सिन्हा जी की उक्त टिप्पणी के आलोक में श्री दामोदर शांडिल्य जी ने अपने मूल मंतव्य को और स्पष्ट करते हुए अपने विचार मातृ ऋण शोधन : पुनर्विचार शीर्षक से लिखे हैं। इस संबध में प्रबुद्ध पाठकों के विचारों का स्वागत है। हमारा प्रयास है कि इस विषय में पाठकों के विचारों को समुचित रूप से प्रकाशित किया जाए, जिससे समाज में स्वस्थ वातावरण का निर्माण हो सके।

सांस्कृतिक गौरव संस्थान के मुख्य परामर्शदाता डॉ. महेश चंद्र गुप्ता जी ने अपने पत्र में लिखा है कि पत्रिका का अक्टूबर 2016 अंक भी पिछले अंकों की भांति बहुत आकर्षक और उपयोगी सामग्री से भरपूर है। मनमोहक चित्रों और आध्यात्मिक ग्रंथों के उद्धारणों से इसकी उपयोगिता निःसंदेह उल्लेखनीय है। डॉ. ओमप्रभात अग्रवाल का विज्ञान में परिवारवाद, डॉ. ज्योत्सना का मूत्र कृच्छ रोग, श्री सुरेंद्र भटनागर का भाषा में वर्ण लेख और महाराणा प्रताप जी के जीवन से संबंधित सामग्री पाठकों के लिए अत्यंत उपयोगी है।

विश्वास है कि मंगल विमर्श पाठकों के जीवन में मंगल देने वाला बना रहेगा।

प्रसिद्ध साहित्कार डॉ. रामसनेही लाल ने अपने पत्र में लिखा है कि पत्रिका सर्वतोभावेन लोक मंगल का उद्देश्य लेकर चल रही है। श्री राजेंद्र सिंह गहलौत का महाराणा प्रताप की महत्ता पर आधारित आलेख इतिहास और सांस्कृतिक बोध के धरातल से जन्मा है, श्री रामनुज की सहस्राब्दि आलेख ने लेखक ने सांस्कृतिक इतिहासबोध की जो विचारोत्तेजक चर्चा उठाई है, वही सच्ची इतिहास दृष्टि है। अन्य सभी आलेख भारतीय चिंतन की व्याख्या-पूर्ण व्याख्या से संबंधित हैं और मूल रूप से जीवन से संपन्न समाज निर्माण में महित भूमिका अदा कर रहे हैं।

श्री रजत सिंघल ने देश की शिक्षा व्यवस्था के संबंध

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 63

में एक विचारपूर्ण पत्र लिखा है, जिसके मुख्य अंश यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं।

आज देश की जो स्थिति है उससे बाहर आने के लिए आज की शिक्षा पद्धति पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। यह बात सभी जानते हैं कि देश में आज जो शिक्षा पद्धति चल रही है वह अंग्रेजों द्वारा अपने औपनिवेशिक साम्राज्य को भारत में चिर स्थाई करने के लिए अपनाई गई थी, जिससे उनको अपना शासन चलाने के लिए पर्याप्त संख्या में कर्मचारी, नौकर और नौकरशाह मिलते रहें। देश में समाजोन्मुखी प्रशासन के लिए अब इस शिक्षा पद्धति में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है ।

शिक्षा किसी भी समाज के मानवीय, चारित्रिक, बौद्धिक व आत्मिक गुणों को विकसित कर उस समाज को स्वाभिमानी,राष्ट्रीय व मानवीय मूल्यों के साथ आगे बढ़ाने के लिए है। इस दृष्टि से निम्न बिंदुओं पर विचार कर शिक्षा नीति बनाना उपयोगी होगा।

देश में सभी विद्यार्थियों को प्राथमिक, आधारभूत व व्यावसायिक शिक्षा प्रदान की जाए और योग्य विद्यार्थियों को उनकी प्रतिभा व रुचि के आधार पर उच्च शिक्षा प्रदान की जाए।

1. **प्रारंभिक शिक्षा** -

5 वर्ष की आयु में आरंभ की जाए, 3 वर्षों में इसको रखा जाए, अर्थात बच्चों को 5 से 8 वर्ष तक यह शिक्षा दी जाए ।

2. आधारभूत शिक्षा

8 वर्ष से 13 वर्ष तक 5 वर्षों का पाठ्यक्रम बनाया जाए, जिसमें निम्न बिंदुओं को सम्मलित किया जा सकता है-

● **भाषा**- छात्र को तीन भाषाओं की शिक्षा दी जाए -हिंदी, अंग्रेजी व प्रादेशिक भाषा। यदि कोई विद्यार्थी संस्कृत का अध्ययन करना चाहे तो उसके अध्ययन की भी व्यवस्था की जाए।

● **गणित** - अंक गणित, बीजगणित। विशेषकर बीज गणित के फार्मूलों को अच्छी तरह से समझाया जाए।

● **जीवन चरित्र** - प्रत्येक वर्ष कम से कम 8 से 10 महापुरुषों का जीवन चरित्र पाठ्यक्रम में शामिल किया जाए। पाठ्यक्रम इस प्रकार बनाया जाए जिससे छात्रों को भारत की सांस्कृतिक, आध्यात्मिक विरासत के साथ ही इसके शौर्य, पराक्रम, साहित्य और स्वातंत्र्य आंदोलन की विस्तृत जानकारी मिल सके।

● **खेल** - खेल को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाए और ओलंपिक व एशियाड में खेले जाने वाले खेलों में से कम से कम 8 - 8 इनडोर और आउटडोर खेलों का चयन प्रत्येक विद्यालय करे तथा प्रत्येक विद्यार्थी के लिए दो-दो इनडोर और आउटडोर खेल निश्चित करें तथा खेलों में प्रतिभा निखारने पर ध्यान दिया जाए। तीन वर्ष तक उपर्युक्त विषयों के अध्ययन के पश्चात चौथे वर्ष में दो विषय और जोड़ देना चाहिए व पांचवे वर्ष में एक विषय और जोड़ दिया जाए।

● **सामाजिक विज्ञान** - विषय को इस तरह विकसित किया जाए कि विद्यार्थी मानवीय संबंधों व उनकी संवेदनाओ को समझने में सक्षम हो सके। पर्यावरण के प्रति जागरूक हो।

● **विज्ञान** - विज्ञान विषय की प्राथमिक जानकारियाँ भूगोल विषय आदि।

● **पांचवे वर्ष में** - नागरिक के अधिकार व दायित्व- यह एक विषय रखा जाए जिसमें कानून के विषय में प्रारंभिक जानकारी दी जाए व कंप्यूटर की प्रारंभिक शिक्षा दी जाए।

3. रोजगारपरक शिक्षा

13 वर्ष से 17 वर्ष तक 4 वर्ष का समय इस

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 64

पाठ्यक्रम को दिया जाए तथा यहाँ पर विद्यार्थी को कोई भी एक विषय चुनने का अधिकार हो, जिस भाषा में वह अध्ययन करना चाहे उसे भी चुनने की उसको स्वतंत्रता हो। इसके साथ ही वह एक अन्य भाषा भी चुन सके।

3 वर्ष तक उस विषय का गहन अध्ययन उसे कराया जाए व चौथे वर्ष में कौशल विकास का विषय जोड़ते हुए शिक्षण दिया जाए।

4. इतना शिक्षण प्राप्त करने के बाद जो विद्यार्थी आगे उच्च शिक्षा लेना चाहे उनको मेरिट के अनुसार आगे बढ़ाया जाए बाकी विद्यार्थियों को डिप्लोमा होल्डर का प्रमाण पत्र देकर कार्यक्षेत्र में भेजा जाए।

शिक्षा किसी भी समाज के मानवीय, चारित्रिक, बौद्धिक व आत्मिक गुणों को विकसित कर उस समाज को स्वाभिमानी,राष्ट्रीय व मानवीय मूल्यों के साथ आगे बढ़ाने के लिए है।

प्रारंभिक शिक्षा, आधारभूत शिक्षा व रोजगारपरक शिक्षा को निजी क्षेत्र से पूरी तरह अलग रखा जाए। इसके लिए राष्ट्रीय नीति के अंतर्गत सरकार द्वारा ही विद्यालयों का संचालन किया जाए। शिक्षा के व्यावसायीकरण को पूरी तरह समाप्त किया जाए और सभी शिक्षार्थी हैं यह एक भाव उत्पन्न किया जाए इसमें अमीर-गरीब, जाति -पाति, संप्रदाय आदि की भावनाओं को पूरी तरह समाप्त कर दिया जाए । प्रारंभिक व आधारभूत शिक्षा पूरी तरह निःशुल्क दी जाए। रोजगारपरक शिक्षा के लिए जिन विद्यार्थियों को धन की आवश्यकता हो इसके लिए उन्हें ऋण उपलब्ध कराया जाए जिसकी वापसी उनके रोजगार पर आने के बाद 3 वर्षों में करने की व्यवस्था हो। जो विद्यार्थी उच्च तकनीकी शिक्षा के लिए चुने जाते हैं उनके लिए पुनः ऋण व्यवस्था करवाई जाए, जिसकी अदायगी उनके रोजगार में आने पर 5 वर्षों में करने की व्यवस्था हो।

उच्च व तकनीकी शिक्षा में यदि निजी क्षेत्र का निवेश हो तो उसके लिए फीस का निर्धारण एक समान हो जो सरकार द्वारा तय किया जाए।

प्रारंभिक शिक्षा, आधारभूत शिक्षा, रोजगारपरक शिक्षा, उच्च व तकनीकी शिक्षा के लिए विद्यालयों की स्थापना ग्रामीण व नगरीय क्षेत्रों में जनसंख्या व आवश्यकता के आधारपर की जाए।

प्रारंभिक शिक्षा के लिए गाँव व बस्ती (कॉलोनी) स्तर पर 100 से 250 संख्या तक विद्यार्थी व 2 से 6 अध्यापक तक की पाठशालाएँ खोली जाएँ तथा जो निजी स्कूल चल रहे हैं उन्हें बंद किया जाए।

आधारभूत शिक्षा के लिए ग्रामीण क्षेत्र में तहसील व नगर में 25 हजार की आबादी पर 500 से 2000 विद्यार्थियों की संख्या तक के विद्यालय खोले जा सकते हैं। रोजगारपरक शिक्षा के लिए हर जिला केंद्र पर आवश्यकतानुसार कम से कम एक या अधिक विभिन्न विषयों के विभागानुसार उच्च विद्यालयों की स्थापना की जाए ।

उच्च व तकनीक शिक्षा के लिए प्रत्येक राज्य में अपना आईआईटी, आईआईएम जैसे बड़े संस्था विश्वविद्यालय की व्यवस्था की जाए ।

शिक्षा को इस आधार पर विस्तार देने से यह क्षेत्र ठीक दिशा में राष्ट्र को आगे ले जा सकेगा।

स्नेहाकांक्षी
आदर्श गुप्ता
प्रबंध संपादक

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 65

सहयोगी वृंद

1. **श्री राजीव जायसवाल**
जी-73, द्वितीय तल, जायसवाल सोसाएटी,
लक्ष्मी नगर, दिल्ली - 110092

2. **श्री जाहिद एम. शाह**
205, द्वितीय तल, गेट नं. 4,
कामधेनु शोपिंग सेंटर, फ्रस्ट क्रॉस लेन
लोखंडवाला, अंधेरी (वेस्ट) -40047

3. **डॉ. कमल किशोर गोयनका**
ए-98, अशोक विहार, फेस-1, दिल्ली-110052

4. **श्री अक्षय कुमार अग्रवाल**
4, शोपिंग सेंटर, ट्रांसपोर्ट सेंटर,
रोहतक रोड़, दिल्ली-110035

5. **श्री सुभाष मित्तल**
एफ-24/163, सैक्टर-7, रोहिणी,
दिल्ली -110085

6. **श्री ओम प्रकाश मिश्रा**
फ्लैट नं. 66, ईको संगम वाटिका,
देव प्रयाग झलवा, इलाहाबाद (उ.प्र.)

7. कर्नल राज्यवर्धन राठौर
बंग्लो नं. 12, सुनहरी बाग,
नई दिल्ली 110001

8. **डॉ. मधुरिमा लाल**
डिपाटमेंट ऑफ अवेयरनेस, लखनऊ विश्व विद्यालय,
लखनऊ-226007 (उत्तर प्रदेश)

9. **मानव अभ्युदय संस्थान**
72, रीगल बिल्डिंग, द्वितीय तल,
बाबा खड़ग सिंह मार्ग,
नई दिल्ली-110001

10. **डॉ. पूर्ण मल गौड़**
963, सैक्टर-14, सोनीपत (हरियाणा)

11. **श्री योगेश चंद मोदी**
ए-7, सैक्टर-14, सोनीपत -131001

12. **श्री एस.पी. गुप्ता** (रिटायर्ड आई.ए.एस)
1/5, सर्वप्रिय विहार, (तृतीय तल),
नई दिल्ली - 110016

13. **डॉ. एस.एस. गोयल**
बी-1/503, टावर हाईट अपार्टमेंट,
क्यू.डी. ब्लॉक, पीतम पुरा,
दिल्ली - 110034

MV_July_2017 01.07.2017 Final Draft:Layout 1 7/3/2017 3:29 PM Page 66

मंगल विमर्श

सदस्यता -प्रपत्र

मंगल विमर्श **त्रैमासिक पत्रिका**

मुख्य संरक्षक	प्रधान संपादक	संयुक्त संपादक	प्रबंध संपादक
डॉ. बजरंगलाल गुप्ता	ओमीश परुथी	डॉ. रवींद्र अग्रवाल	आदर्श गुप्ता

सदस्यता -शुल्क

10 वर्षों के लिए

₹2000 मात्र

पत्रिका सदस्यता शुल्क हेतु
मंगल सृष्टि (Mangal Srushti)
के नाम चैक/ड्राफ्ट सी-84, अहिंसा विहार,
सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 पर भेजें।
फोन नं. +91-9811166215,
+91-11-27565018

मंगल विमर्श की..... वर्षों की सदस्यता हेतु.....

रुपये का ड्राफ्ट/चैक क्रं. ..... दिनांक.....

बैंक..... भेज रहे हैं,

कृपया..... वार्षिक सदस्य बनाने का कष्ट करें।

नाम.....

पता.....

.....

..... पिनकोड .....

फोन :..... मोबाइल:.....

इ-मेल.....

इ-मेल mangalvimarsh@gmail.com **वेब साइट** www.mangalvimarsh.in